卐 श्रीपाल चरित्र 卐

श्री नंदीश्वरव्रत (महात्म्य)

स्व० कवि परिमल्लकृत पद्य ग्रन्थ परसे

अनुवादक :

स्व. धर्मरत्न पं० दीपचन्द्रजी वर्णी (नरसिंहपुर)

प्रकाशक :

शैलेशभाई डाह्याभाई कापड़िया,

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक,

सूरत-३

नवमी आवृत्ति] वीर सं. २५२१ | प्रति १५००

"जैनविजय" प्रिन्टींग प्रेस, सूरतमें शैलेश डाह्याभाई कापड़ियाने मुद्रित किया ।

मूल्य रु. २०-००

* विषय सूची *

१.	मंगलाचरण स्तुति	१
२.	वर्तमान चौबीस जिन स्तुति	२
३.	ग्रन्थ रचनाका कारण	३
४.	अंगदेश चंपापुरका वर्णन	८
५.	श्रीपालके गर्भका वर्णन	१०
६.	श्रीपालके जन्मका वर्णन	११
७.	श्रीपालका राजतिलक और राजा अरिदमनका स्वर्गवास	१४
८.	राजा श्रीपालको कुष्ट व्याधिका होना	१५
९.	काका वीरदमनको राज्यपाट देकर श्रीपालका वनवास जाना	१७
१०.	मैनासुन्दरीका वर्णन	२०
११.	श्रीपालका मैनासुन्दरीसे विवाह	२९
१२.	श्रीपालका कुष्ट रोग दूर होना	४३
१३.	श्रीपालकी माताका श्रीपालसे मिलना	५४
१४.	उज्जैनीसे श्रीपालका गमन	६६
१५.	श्रीपालको जलतारिणी व शत्रुनिवारणी विद्याकी प्राप्ति	७७
१६.	धवलसेठका वर्णन	८०
१७.	श्रीपाल द्वारा धवलसेठको चोरोंसे छुडाना	८५
१८.	श्रीपालको डाकुओंकी भेंट	८९
१९.	श्रीपालको रयनमंजूषाकी प्राप्ति	९०
२०.	राजा कनकतेजा द्वारा श्रीपालकी विदा	१००

२१. धवलसेठ द्वारा श्रीपालका समुद्रमें पतन १०४
२२. धवलसेठका रयनमंजूषाको बहकाना ११३
२३. रयनमंजूषापर कुदृष्टि करनेसे धवलसेठको देवसे दण्ड ११६
२४. श्रीपालका गुणमालासे विवाह १२४
२५. कुंकुमद्वीपमें धवलसेठ, श्रीपालको देखकर उसका घबराना १२९
२६. भांडोंका कपजाल १३२
२७. श्रीपालको शूलीकी तैयारी १३४
२८. रयनमंजूषाका श्रीपालको शूलीसे छुडाना १३७
२९. श्रीपालका चित्ररेखासे विवाह १४१
३०. श्रीपालका पराक्रम और अनेक राजपुत्रियोंसे विवाह १४२
३१. श्रीपालका उज्जैन नगरीमें प्रयाण १४५
३२. श्रीपालका वर्षोंके बाद कुटुम्ब-मिलाप १४८
३३. श्रीपालका राजा पहुपालसे मिलाप १५३
३४. श्रीपालका चंपापुर गमन १५६
३५. श्रीपालका काका वीरदमनसे युद्ध १६१
३६. राजा श्रीपालका सुखपूर्वक राज्य करना १६७
३७. राजा श्रीपालके पूर्व भवांतर १७२
३८. संसारको असारता जान राजा श्रीपालका दीक्षा लेना १७७
३९ श्रीपाल मुनिको केवलज्ञानकी प्राप्ति १८२

* प्रस्तावना *

आगरा निवासी श्रीमान् परिमल्लजी नामक विद्वान जैन कविने 'श्रीपालचरित्र' अर्थात् नंदीश्वर व्रत महात्म्य ग्रन्थ विक्रम सं. १६५१में हिन्दी पद्योंमें रचा था, उसकी हस्तलिखित प्रति लाहोरमें थी, उसे शुद्ध करके बाबू ज्ञानचन्दजी जैन लाहौरने सन् १९०४ में छपवाकर प्रगट किया था, किन्तु वह समाप्त हो गया था और पद्यमें होनेसे सर्वोपयोगी भी नहीं था। इसलिए हमने सभी प्रांतवासी जैनोंके हितार्थ इसे राष्ट्रभाषा हिन्दीमें सं. १९७० में श्री धर्मरत्न प. दीपचंदजी वर्णी अधिष्ठाता ऋषभब्रह्मचर्याश्रम मथुरासे अनुवाद कराकर प्रकट किया था। [वह मूल पद्य ग्रंथ भी हमने पुनः प्रकट किया है। १५) रु० है]

पूज्य वर्णीजी जैन समाजके आदर्श त्यागी एवं विद्वान थे। आपने अनेक ग्रन्थोंका संपादन व अनुवाद किया था। और इस श्रीपालचरित्रका अनुवाद एवं संशोधन परिवर्द्धन आदि भी सर्वसाधारणके हितार्थ आपने ओनररी रूपसे ही कर दिया था।

यह श्रीपालचरित्र अर्थात् अष्टाह्निका व्रत महात्म्य जैन समाजमें कितना प्रिय है, यह इसीसे प्रगट है कि इसकी आठवीं आवृत्ति प्रकट की थी वह भी पूरी हो जानेसे यह नवमी बार प्रगटकर रहे हैं इस आवृत्तिमें यथोचित संशोधन व परिवर्द्धन हुआ है और प्रासंगिक चित्र भी दिए गये है। इन चित्रोंसे इस ग्रंथकी शोभा अधिक बढ़ गई है। आशा है कि इस नंदीश्वरव्रत महात्म्यको समझेंगी और उसे पालन करके पुण्योपार्जन करेगी।

सूरत
वीर सं. २५२१ फागण
सुदी १५ ता. १७-३-९५

शैलेश डाह्याभाई कापड़िया
सूरत-३.

श्रीपाल चरित्र

श्री नन्दीश्वर व्रत महात्म्य

मङ्गलाचरण

वीतराग सर्वज्ञ जिन, हित उपदेशक देव ।
शिवमग दर्शक आप्त नित, नमूं करूं पद सेव ॥१॥
विषयारम्भ परिग्रह बिन, गुरु नमों निर्ग्रन्थ ।
कायर जनको जिन कियो, सरल मोक्षको पंथ ॥२॥
ॐकार वाणी नमूं, द्वादशांग उर धार ।
श्री श्रीपाल चरित्रकी, करू वचनिका सार ॥३॥

पञ्चपरमेष्ठी-स्तुति

कर्म घातिया नाशकर, छहो चतुष्क अनन्त ।
नमूं सकल परमात्मा, वीतराग अर्हन्त ॥४॥
नित्य निरंजन सिद्ध शिव, मूर्ति रहित साकार ।
अमल निकल परमात्मा, नमूं त्रियोग सम्हार ॥५॥
दीक्षा शिक्षा देत जो, सकल संघके ईश ।
ऐसे सूर मुनीन्द्रको, वन्दू कर धर शीश ॥६॥
द्वादशांग श्रुत निपुण जे, पढें पढावें धीर ।
ऐसे श्री उवझाय मुनि, वेग हरो भवपीर ॥७॥
विषयारम्भ निवारके, मोह कषाय विडार ।
तजे ग्रंथ चौबीस जिन, साधु नमूं सुखकार ॥८॥
पंच परम पद मैं नमूं, आठों अंग नवाय ।
जा प्रसाद मंगल लहूं, कोटि विघन क्षय जाय ॥९॥

वर्तमान चौबीसी जिन स्तुति

नमों मैं प्रथम ऋषभ चरणा,
दूजे अजित अजित रिपु जीते, ध्याऊं अघहरना ।
तीजे सम्भव भव नाशे,
चौथे अभिनन्दन पद सेऊं, कर्म नशैं जासे ॥

पंचम सुमति-सुमतिदाता, छठे पद्मनाथ पद पंकज सेऊं शिव दाता ।
सातवें श्रीसुपार्श्वनाथा आठें चन्द्रनाथ जिनचरणोंनाऊं निजमाथा
नवमें पुष्पदंत-संता दशवों शीतलनाथ जिनेश्वर देत शर्मअनंता ।
ग्यारहवों श्रेयांसस्वामी, वासुपूज्य बारहवों ध्याऊं तीनलोकनामी ॥
तेरहवों विमल र जानो, अनंत चतुष्टययुत चौदहवोंअनंतनाथमानो ।
पंद्रहवों धर्मशम करता,सोलहवों,श्रीशांतिनाथप्रभु भवाताप हरता
सत्रहवेंकुन्थुनाथस्वामी,अरहनाथ अरिगणवसुनाशक अठाहरवोंनामी
उन्नीसवें मल्लिमल्लचूरे, विशतिवें मुनिसुव्रतस्वामीव्रत अनंत पूरे ॥
इक्कीसवें नमिनाथ देवा, बाईसवें श्रीनेमिनाथ शत इन्द्र करें सेवा ।
तेईसवें पार्श्वनाथ ध्याऊं,चौबीसवें श्रीवर्धमानको भक्ति हिए भाऊं

तीर्थङ्कर चौबीसों नामी,
पंचकल्याण धारी सब ही, शिवपुर विसरामी ।
विनय यह "दीपचन्द" केरी,
जब लग मोक्ष मिले नहीं, तबलग लहूँ भक्ति तेरी ॥

यह विधिर जिन स्तुति,भक्ति भाव उर माय ।
करुं वचनिका ग्रन्थकी, शारद करो सहाय ॥

ग्रन्थ (चरित्र) रचनाका कारण

अनन्त अलोकाकाशके ठीक मध्यभागमें असंख्यात प्रदेशी ३४३ घन राजू प्रमाण, दोनों पैर फैलाकर अपनी कमर पर हाथ रक्खे खड़े हुए मनुष्यके आकारका, पूर्व पश्चिम नीचे सात राजू चौड़ा, फिर क्रमसे घटता हुआ सात राजू, ऊंचाई पर केवल एक ही राजू, और यहांसे साढ़े तीन राजू ऊंचाई तक क्रमसे बढ़ता हुआ ५ राजू होकर फिर क्रमसे घटते हुए उपर साढ़े तीन राजू जाकर एक राजू मात्र चौड़ा और उत्तर दक्षिण सर्वत्र सात सात राजू ऊपरसे नीचे तक चौड़ा अर्थात् नीचेसे उपर तक कुल १४ राजूको ऊंचाई वाला ३४३ घनराजू प्रमाण असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश है ।

इसमें इतने ही (जघन्य युक्तासंख्यात प्रदेश प्रमाण प्रदेशों वाले) धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अखंड सर्वत्र व्याप्त हैं। इसके सिवाय लोकाकाश प्रमाण ही असंख्यात प्रदेशोंवाले, अनन्तानन्त जीव द्रव्य संख्यात असंख्यात तथा अनन्त प्रदेशों (परमाणुओं) के अनेकों स्कन्धों तथा परमाणु स्वरूपी पुद्गल और लोकप्रमाण असंख्यात कालाणुओंसे यह लोकाकाश खूब ठसाठस भर रहा है। इस लोकाकाशके मध्य (उत्तर, दक्षिण दोनों ओर तीन तीन राजू छोड़कर ठीक मध्य भागमें) एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी और चौदह राजू ऊंची त्रस नाडी है, अर्थात् त्रस (दो, तीन, चार और पांच इन्द्रिय वाले) जीव केवल इतने ही क्षेत्रमें रहते हैं । परन्तु स्थावर (एकेन्द्री) त्रस नाडीके अन्दर और बाहर सर्वत्र पाये जाते हैं ।

लोकाकाशके ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक इस प्रकार तीन खंड माने गये है । नीचेसे लेकर उपर सात राजू तक त्रस नाडी (अधोलोक) में क्रमसे सातवां, छठवां, पांचवां, चौथा,

तीसरा, दूसरा और पहला नर्क, तथा भवनवासी और व्यंतर जातिके देवोंका निवास है । इसके उपर इसी पृथ्वी पर सुदर्शन मेरुकी मूल जमीन १००० महायोजनसे लेकर उपर ९९०४० महायोजन प्रमाण ऊंचाईवाला १ राजू लम्बा, चौड़ा तिर्यक्लोक (मध्यलोक) है । वहांपर मनुष्य और तिर्यंच तथा व्यंतर और ज्योतिषी देवोंका निवास है । इससे उपर कुछ कम सात राजू तक कल्प (स्वर्ग) वासी देव, इन्द्र तथा कल्पातीतों (अहमिन्द्रों) का निवास है । और अन्तमें सबसे उपर लोकशिखर पर तनवातवलयके अन्तिम भागमें ४५ लाख महायोजनप्रमाण गोल मनुष्य क्षेत्रके बराबर क्षेत्रमें समस्त कर्म-मल-कलंकोंसे रहित तथा अनन्तज्ञान दर्शन, सुख और वीर्यादि अनन्त गुणोंसे सहित नित्य निरंजन अमूर्तीक अखण्ड त्रिलोक-पूज्य अनन्त सिद्ध परमात्मा अपनी२ सुखसत्ता अवगाहना युक्त, शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल शिलाके उपर स्वाधार तिष्ठे हैं । उन सिद्ध भगवानको मेरा सर्वदा मन, वचन, कायसे अष्टांग नमस्कार होवे ।

उपर कहे अनुसार त्रस नाड़ीके बीचोंबीच (उपर नीचे सातर२ राजू छोड़कर) जो एक राजू प्रमाण चौकोर मध्यलोक है, उसमें जघन्य युक्तासंख्यात (संख्या प्रमाण) द्वीप और समुद्र हैं जो एक दूसरेको चूड़ीकी तरह घेरे हुए दूने २ विस्तारवाले हैं । अर्थात् सबसे मध्यमें नाभिके समान १ लाख योजन×२००० कोसके व्यासवाला थालीके आकार गोल जम्बूद्वीप है । इसके सब ओर गोल दो-दो लाख योजन व्यासवाला (चौड़ा) लवण समुद्र, उससे सब ओर चार२ लाख योजन चौड़ा धातकी खण्ड द्वीप, इसके आसपास आठ-आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है । इसके आसपास सोलह२ योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है । (इस द्वीपमें ठीक बीचमें, कोटकी भींतके समान अत्यन्त ऊंचा मनुष्योंसे अनुल्लंघ्य),

मानुषोत्तर पर्वत है। इससे यह आधा द्वीप और धातकी खण्ड तथा जम्बूद्वीप मिलकर अढाई द्वीप ४५ लाख महा-योजनके व्यासवाले हैं।

इतना ही मनुष्य लोक है। यहींसे संसारी जीव कर्मोंको नाश करके मुक्त हो सकते हैं। इसके सिवाय इसी प्रकार दूने २ विस्तारवाले समुद्र उसके आसपास द्वीप, उसके आस-पास समुद्र आदि असंख्यात द्वीप समुद्र हैं जिनमें सबसे अन्तका द्वीप तथा समुद्र स्वयंभूरमण हैं। इस अन्तके आधे द्वीप और समुद्रमें क्रमशः पंचेन्द्रिय थलचर जलचर पशु होते हैं। यह सब तिर्यक्लोक है। अढाई द्वीपसे परे मनुष्योंका गमनागमन नहीं है।

ऐसे इस मध्यलोकके मध्यवर्ती नाभिके तुल्य इस जम्बूद्वीपमें बीचोबीच सुदर्शन मेरु नामका १ लाख योजन ऊंचा पर्वत है, जिसके दक्षिण उत्तर छह कुलाचल पर्वत हैं। उनसे इसके सात क्षेत्र हो गये हैं। उन क्षेत्रोंमेंसे दक्षिण दिशामें धनुषा-कार यह भरतक्षेत्र है। जिसके बीचमें वैताढ्य पर्वत तथा महागंगा और सिन्धु नदी बहनेसे प्राकृतिक छह भाग हो गये हैं। सो आसपास तथा ऊपरके मिलकर ५ म्लेच्छ और दक्षिण भागमें १ आर्यखण्ड है। उसके मध्य भागमें मगध देश है जिनमें एक राजगृही नामकी नगरी है। यह नगरी अत्यन्त शोभायमान और धन जनकर पूर्ण है, जहां बड़े २ विशाल मन्दिर बने हुये हैं। तथा जो वन उपवन, कोट खाई, ताल, बावड़ी आदिसे अति रमणीक मालूम होती है।

यहां महामंडलेश्वर महाराज श्रेणिक राज्य करते थे। यह राजा अत्यन्त नीतिनिपुण, न्यायी, प्रजावत्सल, प्रतापी और धर्मात्मा थे। इनके राज्यमें दीनदुःखी पुरुष दृष्टिगत ही नहीं होते थे। इनकी मुख्य पटरानी चेलना बहुत ही

धर्म, परायण और पतिव्रता थी। और इनके वारिषेण, अभयकुमारादि बहुतसे गुणवान पुत्र थे।

तात्पर्य यह है कि सब प्रकारसे राजा प्रजा अपने २ संचित पुण्यका भोग करके भी आगेको पुण्योपार्जन करनेमें किसी प्रकार कमी नहीं करते थे। अर्थात् दान पूजादि गृहस्थोचित षट्कर्मोंमें तथा धर्ममें भी पूर्ण योग देते थे।

एक समय जब राजा श्रेणिक राज्य सभामें सिंहासनारूढ थे, उसी समय वनपाल (माली) ने आकर छहों ऋतुके फल फूल राजाको भेंट किये और प्रार्थना की कि हे नरेन्द्र ! 'विपुलाचल पर्वत' पर चतुर्विंशति तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी समवशरण सहित पधारे हैं। ये सब फलफूल उनके ही प्रभावसे बिना ऋतु आये फले और फूले हैं। चारों ओर कूप तड़ाग और सरोवर भरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वनके सब जाति विरोधी जीव जैसे—सिंह और बकरी, मूसा और बिलाव आदि परस्पर मैत्री भावसे बैठे हैं।

हे स्वामी ! वहां दिन-रातका भी कुछ भेद मालूम नहीं पड़ता है, ऐसी अद्भुत शोभा है, जिसका वर्णन होना कठिन है और वहां सुर नर पशु सभी दर्शन करके आत्मकल्याणका मार्ग ग्रहण कर रहे हैं।

यह समाचार सुनकर राजाको अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने तुरन्त अपने शरीर परके वस्त्राभूषण उतारे और वनमालीको दिये, तथा आसनसे उठकर परोक्ष नमस्कार किया, और नगरमें आनन्दभेरी (मुनादी) दिवाई कि सब नरनारी श्री वीर भगवान्के दर्शनको पधारें। इस प्रकार राजा स्वयं भी चतुरंग सेना सहित हर्षका भरा चेलनादि रानियों सहित समवसरणमें वंदनार्थ गये। वहां जाकर प्रथम ही भगवानको अष्टांग नमस्कार करके स्तुति करने लगा।

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, निजानन्द गुणखान ।
अनन्त चतुष्टयके धनी, नमूं वीर भगवान ॥

जय जय जिनवर तारन तरन, अब अब जन्म जरा भय हरन ।
जय जय उद्यत ज्ञान दिनेश, जय जय मुक्तिवधू परमेश ॥
जय जय छयालीस गुण मण्ड, जय अतिशय चौतीस प्रचण्ड ।
तीन लोकको शोभा ताहि, और कोई उपमा नाहि आहि ॥
जय जय केवलज्ञान प्रकाश, जय जय निशदिन भव्य दास ।
जय सब दोष रहित जिनदेव, सुरनर असुर करें तुम सेव ॥
यह विधि जिनवर थुति करेय, बार तीन प्रदक्षिणा देय ।
विनवे श्रेणिक बारम्बार, भवदधिसे प्रभु कीजे पार ॥

तत्पश्चात् चतुर्विध संघकी यथायोग्य विनय कर मनुष्योंकी सभामें जाकर बैठ गया और प्रभुकी वाणीसे दो प्रकार सागार और अनगार धर्मका स्वरूप सुनकर पूछने लगा कि हे प्रभु ! सिद्धचक्र व्रतकी विधि क्या है ? और इसे स्वीकार कर किसने क्या फल पाया है, सो कृपा कर कहिये, जिसे सुनकर भव्यजीव धर्ममें प्रवर्ते और दुःखसे छूटकर स्वाधीन सुखका अनुभव करें ।" तब गौतम स्वामी (जो श्री वीर भगवानके उपदेशकी सभा (समवशरण) में प्रथम गणधर—गणेश थे) बोले—हे राजन् ! इसकी कथा इस प्रकार है, सो मन लगाकर सुनो ।"

अंगदेश चंपापुरीका वर्णन

इसी जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें जो यह आर्यखण्ड है इसके मध्य एक अंगदेश नामका देश है और उसमें चंपापुर नामका एक नगर है। इसी नगरके समीपी उद्यानसे श्री वासुपूज्य स्वामी बारहवें तीर्थंकर निर्वाण पधारे हैं। यह नगरी अत्यन्त रमणीक है। चारों ओर वन उपवनोंसे सुशोभित है। उन वनोंमें अनेक प्रकारके वृक्ष अपनी स्वभाविक हरियाली लिये पवनके झंकोरोंसे हिल रहे हैं। मन्दसुगंध वायु बहा करती है। कहीपर कल्लोलें करते हुए नदी नाले बहते हैं। जिनमें अनेक जातिके जलचर जीव क्रीड़ा कर रहे हैं। कहीं वृक्षोंपर पक्षी अपने अपने घोंसलोंमें बैठ नाना प्रकारकी किल्लोलें कर रहे हैं। वे कभी फड़कते, कभी लटककर चुह-चुहाते हैं। बन्दर आदि वनचर जीव एक वृक्षसे दूसरे और दूसरेसे तीसरेपर प्रमुदित हुये कूद रहे हैं। घास चारों ओर लहरा रही है।

वन-वेलोंको तो कहना ही क्या है? जिस प्रकार लज्जावती स्त्रीके चहूँ ओर वस्त्र आच्छादित रहते हैं और उसका बदन (शरीर) रूप, रंग कोई नहीं देख सकता है, उसी प्रकार उन्होंने वृक्षोंको चारों ओरसे ढांक लिया है। कहीं हाथियोंके समूह अपनी मस्त चालसे विचर रहे हैं, तो कहीं मृग बिचारे सिंहादि शिकारी जानवरोंके भयसे यहां वहां दौड़ते फिर रहे हैं, कहीं सिंह चिंघाड़ रहे हैं, कहीं पुष्पवाटिकाओंमें नाना प्रकारके फूल जैसे चम्पा, चमेली, जुही, मचकुन्द, मोगरा, मालती, गुलाब आदि खिल रहे हैं। जिनपर सुगन्धके लोभी भौंरा गुंजार कर रहे हैं, कहींपर बागोंचेमें नाना प्रकारके फल जैसे आम, जाम, सीताफल, रामफल, श्रीफल, केला, दाडिम जामुन आदि लग रहे हैं। जलकुंडोंमें मछलियां किल्लोलें कर रही हैं, सरोवरमें अनेक जातिके

कमल फूल रहे हैं तथा सारस व हंस आदि पक्षी क्रीड़ा करते हैं, तो कहीं हंसोंकी चाल देख बगुला भी उन्हींसे मिलना चाहता है, परन्तु कपट भेष होनेके कारण छिप नहीं सकता है । इत्यादि अवर्णनीय शोभा है ।

उस नगरमें बड़े२ उत्तुंग गगनचुम्बी महल बने हैं, और प्रत्येक महल जिन चैत्यालयोंसे शोभायमान है । चौपड़के समान बाजार बने हुए हैं जिनमें हीरा, रत्न, माणिक, पन्ना, नीलम, पुखराज, आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थोंका वाणिज्य होता है । कहीं कपड़ेकी गांठें दृष्टिपात हो रही हैं, कहीं बिसातखाना चल रहा है, कहीं फलफूल मेवोंका और कहीं अनाजका ढेर है । इस प्रकार बाजार भर रहे हैं । इस नगरमें बड़े२ विद्वान, पण्डित, कवि आदिका निवास है । कहीं वेदध्वनि होती है, कहीं शास्त्र संवाद चल रहा है, कहीं पुराणी पुराणका कथन करते हैं, कहीं विद्यार्थी पाठशालामें अध्ययन करते हैं, मानो यह विद्यापुरी ही है ।

जहां ईति भीति देखनेमें नहीं आती है । चारों वर्णके मनुष्य जहां अपने२ कुलाचारका पालन करते हैं । सभी लोग प्रायः सुखी दृष्टिगत होते हैं, भिक्षुक सिवाय परम दिगम्बर मुद्रायुक्त अयाचीक वृत्तिके धारी मुनियोंके अतिरिक्त कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होते । जहां सदैव परम दिगम्बर मुनियोंका विहार होता रहता है और श्रावकगण मुनियोंके आनेकी प्रतिक्षा करते रहते हैं, जो अपने निमित्त तैयार की हुई रसोईमेंसे ही नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान देकर पीछे आप भोजन करते हैं । वे सब द्विजवर्णके श्रावक दातारके सप्त गुणोंके धारक और श्रावककी क्रियामें अति निपुण हैं । इस प्रकार यह चंपापुरीकी ऐसी शोभा है मानों स्वर्गपुरी ही उतर आई है ।

श्रीपालके गर्भका वर्णन

इसी चंपापुर नगरमें महाराजा अरिदमन राज्य करते थे, इनके छोटे भाईका नाम विजयमन था । इनका राज्य नीतिपूर्वक चारों ओर व्याप रहा था । कहीं भी किसी तरहका कोई संकट दिखाई नहीं देता था । हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी प्यादे आदि सेना बहुलायतसे थी । बडेर शूरवीर दरबारमें सदा उपस्थित रहते थे । दूर२ तक सब ओर इनकी राज्य-नीतिकी प्रशंसा सुनाई देता था । इनकी रानी कुन्दप्रभा कुन्दके पुष्पके समान अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी, शीलधर्ममें सीतासे कम न थी । जिस प्रकार कामकी रति, शशिकी रोहिणी, विष्णुकी लक्ष्मी और रामकी सीता प्यारी थी, उसी प्रकार यह रानी भी अपने पतिकी प्रिया थी । पतिके सुखको सुख और उसके दुःखको दुःख समझती थी ।

ऐसी पतिभक्ता स्त्रियोंको ही संसारमें महिमा है, क्योंकि जो ऐसी कोई२ सच्चरित्रा स्त्री न होती, तो यथार्थमें स्त्री जाति आदर योग्य भी नहीं रहती । एक दिन यह रानी जब सुख शय्यापर सोई थी, तब उसने रात्रिके पिछले पहरमें एक स्वप्न देखा । जिसमें स्वर्ण सरीखा बहुत बड़ा पर्वत और कल्पवृक्ष देखे और इसी समय स्वर्गसे एक देव चलकर रानीके गर्भमें आया ।

इतनेमें प्रातःकाल हुआ, और दिनकरके प्रतापसे अन्धकारका इस प्रकार नाश हो गया, जैसे सम्यक्के प्रभावसे मिथ्यात्वका नाश हो जाता है । तब वह कोमलांगी सुशीला रानी शय्यासे उठी और अपने शरीरादिकी नित्य क्रियासे निवृत्त होकर मंद गतिसे गमन करती हुई स्वपतिके समीप गई, और विनयपूर्वक नमस्कार कर मधुर शब्दोंमें रात्रिको देखे हुए स्वप्नका सब समाचार सुनाने लगी ।

राजाने भी रानीको उचित सम्मानपूर्वक अपने निकट अर्द्ध सिंहासन पर स्थान दिया, और स्वप्नका वृत्तांत सुनकर कहा—'हे प्राणवल्लभे ! तेरे इस स्वप्नका फल अति उत्तम है अर्थात् आज तेरे गर्भमें महातेजस्वी, धीर, वीर, सकल गुण निधान, चरमशरीरी नररत्न आया है । पर्वत देखा, इसका फल यह है कि तेरा पुत्र बड़ा गंभीर, साहसी, पराक्रमी और बलवान होगा, तथा उसका सुवर्ण सरीखा वर्ण होगा । और कल्पवृक्ष देखा है इससे वह बहुत ही उदारचित्त, दानी, दीन जन प्रतिपालक और धर्मज्ञ होगा ।

तात्पर्य कि तेरे गर्भसे सर्वगुण सम्पन्न मोक्षगामी पुत्ररत्न होगा । इस प्रकार दम्पत्ति (राजारानी) स्वप्नका फल जानकर बहुत प्रफुल्लित हुये, सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे ।

= ❀ =

श्रीपालके जन्मका वर्णन

दोयजके चन्द्रके समान गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा, और बाह्य चिन्ह भी प्रगट होने लगे, जिससे शरीर कुछ पीलासा दिखने लगा, कुछ उन्नतरूप और दुग्धपूरित हो गये, नेत्र हरेर हो गये, और दिनोंदिन रानीको शुभ कामनायें दोहला (इच्छा) उत्पन्न होने लगीं । इस प्रकार आनन्दपूर्वक दस मास पूर्ण होनेपर जिस प्रकार पूर्व दिशामें सूर्यका उदय होता है, उसी प्रकार रानी कुन्दप्रभाके गर्भसे शुभ लग्नमें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई । जन्मते ही दुर्जन पुरुषों व शत्रुओंके घर उत्पात होने लगे, और स्वजन, सज्जन, पुरुजनोंके आनन्दकी सीमा न रही । घरोंघर नगरमें आनन्द बधाइयां होने लगीं, स्त्रियां मंगलगान करने लगीं, याचकों (भिखारी) को इतना दान दिया गया कि

जिससे वे सदैवके लिए अयाचक हो गये । किसीको हाथी, किसीको घोड़े, किसीको ग्राम, क्षेत्र आदि जागीरें भी पारितोषकमें दी गयीं । नगरमें जहां तहां वादित्रोंकी ध्वनि सुनाई देती थी । तात्पर्य कि राजाने पुत्र जन्मका बड़ा हर्ष मनाया, और यह सोचकर कि ये सब धर्महीका फल है, श्री जिनेन्द्र देवकी विधिपूर्वक पूजा-भक्ति भी की ।

इस प्रकार जब बालक एक मासका हुआ, तब राजा-रानी बड़े उत्साहसे समारोहपूर्वक बालकको लेकर श्री जिन मंदिरको गये, और प्रथमही भगवानको अष्ट द्रव्यसे पूजा कर, पीछे वहां तिष्ठे हुये श्री गुरुके चरणारविन्दोंमें बालकको रखकर, विनयपूर्वक नमस्कार किया, तब मुनिराजने जिनको कि शत्रु मित्र समान हैं, उनको धर्मवृद्धि देकर धर्मोपदेश दिया सो दम्पतिने ध्यानपूर्वक सुना, और अपना धन्य भाग्य समझकर मुनिको नमस्कार करके घरको लौट आये । और निमित्तज्ञानीको बुलाकर बालकके ग्रह-लक्षण और नाम आदि पूछा । तब निमित्तज्ञानीने जन्म लग्न परसे विचार कर कहा कि—"हे राजन् ! आपका पुत्र बहुत ही गुणवान, पराक्रमी, कर्मशत्रुओंको जीतनेवाला, प्रबल, प्रतापी शूरवीर, रणधीर और अनेक विद्याओंका स्वामी होगा । इसके जन्म लग्नमें ग्रह बहुत अच्छे पड़े है । मैं इस बालकके गुणोंको वचन द्वारा नहीं कह सकता, इसका नाम श्रीपाल रखना चाहिए ।

जब राजाने इस प्रकार होनहार बालकके शुभ लक्षण सुने तब आनन्द और भी अधिक बढ़ गया । उन्होंने निमित्तज्ञानीको अतुल संपत्ति देकर बिदा किया, और बड़े प्यारसे पुत्रका लालन पालन करने लगे । अब दिनोंदिन श्री श्रीपालकुमार द्वितीयाके चंद्रमा समान वृद्धिको प्राप्त होने लगे । इनकी बालक्रीड़ा मनुष्योंके मनको हरनेवाली थी । कभी ये औंधे

होकर पेटके बलसे रेंगते, कभी घुटनोंके बलसे चलते, कभी कुदक कुदक कर पैर उठाते, कभी संकेत करते, और कभी अपनी तोतली बोली बोलते थे। कभी मातासे रुस कर दूर हो जाते थे, और कभी दौड़कर लिपट जाते थे,। वे नंगके बालकोंमेंसे रुसे मालूम होते, जैसे तारागणोंमें चन्द्रमा शोभा देता है इस प्रकारकी क्रीडाको देखकर माता पिताका मन प्रफुल्लित होता था।

'बालककी सुन तोतरी बाता, होत मुदित मन पितु अरु माता'

इस तरह जब श्रीपालजी आठ वर्षके हुए, तब इनका मूंजीबन्धन तथा उपनयन संस्कार किया गया, अर्थात् जनेऊ पहिनाकर पंचाणुव्रत दिये गये, श्रावकके अष्टमूलगुण धारण कराये, सप्त व्यसनका त्याग कराया और यावत् विद्याध्ययन-काल पूर्ण न हो वहां तकके लिए अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत दिया गया।

इस प्रकार यथोक्त मन्त्रों द्वारा विधि पूर्वक पूजन हवनादि करके इनको गृहस्थाचार्यके पास पढनेके लिये भेज दिया। सो गुरुने प्रथमही ॐकारसे पाठ आरम्भ कराकर थोडी ही दिनोंमें श्रीपालकुमारको तर्क, छन्द, व्याकरण, गणित सामुद्रिक, रसायन, गायन, ज्योतिष, धनुषबाण (शास्त्र विद्या) पानीमें तैरना, वैद्यक, कोकशास्त्र, वाहन नृत्य आदि विद्या और संपूर्ण कलाओंमें निपुण कर दिया। तथा आगम और अध्यात्म विद्यायें भी पढ़ाई।

इस प्रकार श्रीपालजी समस्त विद्याओंमें निपुण होकर गुरुकी आज्ञा ले अपने माता-पिताके समीप आये और उनको विनय पूर्वक नमस्कार किया। माता-पिताने भी पुत्रको विद्यालंकृत जानकर शुभाशीर्वाद दिया। अब श्रीपालकुमार नित्यप्रति राज्य सभामें जाने और राज्यके कामों पर विचार करने लगे।

श्रीपालका राजतिलक और राजा अरिदमनका कालवश होना

एक समय राजा अरिदमन सभामें बैठे थे कि इतनेमें श्रीपालकुमार भी सभामें आये और योग्य विनय कर यथास्थान बैठ गये। उस समय राजाने अपनी वृद्धावस्था और श्रीपाल कुमारकी सुयोग्यता देखकर तथा इनके अतुल पराक्रम, न्याय-शीलता और शूरवीरतादि गुणोंसे प्रसन्न होकर इनको राज-तिलक देनेका निश्चय कर लिया। और शुभ मुहूर्तमें सब राजभार इनको सौंपकर आप एकांतवास करने तथा धर्म ध्यानमें कालक्षेप करने लगे।

थोड़े ही समय बाद वृद्ध राजा अरिदमन कालवश हुये। जिससे राजा श्रीपाल इनके काका वीरदमन, तथा माता कुन्दप्रभादि समस्त स्वजन तथा पुरजन शोकसागरमें डूब गये। चारों ओर हाहाकार मच गया, तब, बुद्धिमान राजा श्रीपालने पुरजनोंको अत्यन्त शोकित देख धैर्य (साहस) धारण कर सबको संसारकी दशा और जीव कर्मका संबन्ध इत्यादि समझाकर संतोषित किया।

उन्होंने कहा कि मृत्यु तो मेरे पिताका हुई है, तुम्हारे पिता तो हम उपस्थित ही हैं, अतएव पिताके राज्यमें जिस प्रकार आप लोग सुख शांतिसे रहते थे, वैसे ही रहेंगे, मैं शक्तिभर आपको सुखी करनेका प्रयत्न करूंगा और आप भी न्यायपूर्वक मेरी सहायता करेंगे इत्यादि। इसके अनन्तर वे राज्यकार्यमें दत्तचित्त हुए। चारों दिशाओंमें अपने बुद्धि-बल तथा पराक्रमसे अपने न्यायी तथा प्रजावत्सलपनेकी कीर्ति विस्तृत कर दी। बड़े२ राजाओंको अपने आज्ञाकारी बनाये, दुर्जनोंको जीतकर वश किये, प्रजाको चोरादि

दुष्टजनोंकृत उपद्रवोंसे सुरक्षित किया। इनके राज्यमें लुच्चे चोर लबार, चुगलखोर, व्यभिचारी, हिंसक आदि जीव क्वचित् भी दृष्टिगोचर, नहीं होते थे। सब लोग अपने२ धर्म कर्मोंमें आरूढ़ रहते थे। राजाज्ञा पालन करना उनका मुख्य कर्त्तव्य था। इस तरह न्याय नीतिपूर्वक इनका राज्य बहुत काल तक निष्कंटक चला।

=*=

श्रीपालको कुष्ट व्याधिका होना

जिस समय श्रीपालजी सुख पूर्वक कालक्षेप कर रहे थे और प्रजाका न्याय तथा नीतिपूर्वक पालन करते थे, उस समय उनका यह ऐश्वर्य दुष्ट कर्मसे सहन नहीं हुआ, अर्थात् काम-देव तुल्य राजा श्रीपालके शरीरमें कुष्ट (कोढ़) रोग हो गया, सब शरीर गलने लगा, और उसमेंसे पीव लोहू आदि बहने लगे, जिससे समस्त शरीरमें पीड़ा होने लगी और दुर्गन्ध निकलने लगी।

यह दशा केवल राजाकी ही नहीं किन्तु राजाके सभी सातसौ वीरोंकी भी हुई। दीवान, सेनापति, मन्त्री, पुरोहित, कोतवाल, फौजदार न्यायाधीश और अंगरक्षक सबको एकसी दशा थी। प्रजागण इनकी यह दशा देख अत्यंत दुःखी थे, और अपने राजाको भलाईके लिए सदैव श्रीजीसे प्रार्थना करते थे, कि किसी प्रकार राजा व सभीको सुखोंका आराम मिले परन्तु कर्म बलवान है, उनपर किसीका वश नहीं चलता।

एक कविने ठीक ही कहा है –

कर्म बली अति जगतमें, सब ही जीव वश कीन।
महाबली पुनि वे पुरुष, करे कर्म जिन छीन॥

तात्पर्य—इन सबका रोग दिनोंदिन बढ़ने लगा, और शरीरसे बहुत दुर्गन्ध निकलने लगी। जिस ओरकी पवन होती थी उसी ओरके लोग इनके शरीरका दुर्गन्धिसे व्याकुल हो जाते थे। प्रजामें एक तो राजाके दुःखसे योंही दुःख छा रहा था, दूसरे दुर्गन्धिसे और भी बुरी दशा थी परन्तु प्रजाके लोग राजासे यह बात कहनेमें संकोच करते थे, इसलिये कितने तो घर छोड़कर बाहर निकल गये, और कितने ही जानेकी तैयारी करने लगे, अर्थात् सब नगर धीरे २ उजाड़सा प्रतीत होने लगा, तब नगरके बड़े २ समझदार लोग मिलकर राजा श्रीपालजीके काका वीरदमनके पास गये व अपनी सब दुःख कहानी कह सुनाई।

वीरदमनने सबको धीरज देकर कहा—आप लोग किसी प्रकार व्याकुल न हों। राजा श्रीपाल बड़े न्यायी और प्रजा-वत्सल हैं। वे आजकल पीड़ाके कारण बाहर नहीं निकलते, इसीलिये उनके कानों तक प्रजाकी दुःख-वार्ता नहीं पहुंची है। इसीसे अब तक आप लोगोंको कष्ट पहुंचा है। अब शीघ्र ही यह खबर उनको पहुँचाई जायेगी, और आशा है कि वे तुरन्त ही किसी भी प्रकारसे प्रजाके इस दुःखका प्रतीकार करेंगे। इस प्रकार संतोषित कर वीरदमनने सबको विदा किया।

❀×❀

श्रीपालका वीरदमनको राज्य देकर वनवासको जाना

काका विरदमन मनमें विचारने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? जो राजा नगरमें रहते हैं तो प्रजा भागी जाती है, और जो प्रजाको रखते हैं तो राजाको बाहर जाना पडेगा। यह तो गुड़-लपेटी छुरी गलेसे अटकी है, जो बाहर निकालें तो जीव कटे, और अन्दर निगलें तो पेट फटे। इस प्रकार दुःखित हो रहे थे। और सोचते थे—

पंख बिना पक्षी जिसो, पानी बिन तालाब।
पात बिना तरुवर जिसो, रैंयत बिनयों राव॥
नभ उडयन ज्यों चंद बिन, ज्यों बिन वृक्ष उद्यान।
जैसे धन बिन मेह त्यों, प्रजा बिना राजान॥
जैसे ब्राह्मण वेद बिन, वैश्य वित्त बिन जान।
शस्त्र बिना क्षत्रीय जिसो, बिना प्रजा राजान॥

तात्पर्य—बिना प्रजाके राजा शोभा नहीं देता है। इत्यादि सोच विचारकर वीरदमन श्रीपाल राजाके पास गये और अति ही प्रीति भरे नम्र वचनोंसे प्रजाको सब दुःख कहानी कह सुनाई। तब राजा प्रजाके दुःखको सुनकर और भी व्याकुल हुए और आतुरतासे पूछने लगे—

'काकाजी ! प्रजाको इस कष्टसे बचानेका कुछ यत्न है, तो निःशंक होकर कहो। क्योंकि जिस राजाकी प्यारी प्रजा दुःखी रहे, वह राजा अवश्य ही कुगतिका पात्र है। काकाजी ! मैं अपने कारण प्रजाको दुःखी रखना नहीं चाहता। मुझे

इस बातकी विशेष चिन्ता है, क्योंकि मेरे शरीरसे बहुत ही दुर्गन्ध निकलती है, जिसको वास्तवमें प्रजा नहीं सह सकती, और मुझसे कह भी नहीं सकती, इसलिये शीघ्र ही ऐसा उपाय बताइये ताकि प्रजा सुखी होवे।"

यह सुनकर काका वीरदमन बोले—'हे राजन् ! मुझे कहनेमें यद्यपि संकोच होता है, तथापि प्रजाकी पुकार और आपके आग्रहसे एक उपाय जो मुझे सूझा है सो निवेदन करता हूं, आशा है उसपर पूर्ण विचार कर कार्य करेंगे। श्रीपालके शरीरमें जबतक यह व्याधि वेदना है, तबतक नगरके बाह्य उद्यानमें निवास करें, और राजभार किसी योग्य पुरुषके स्वाधीन कर देवें।

वीरदमनकी बात सुनकर श्रीपालजीने निष्कपटभावसे कह दिया कि मुझे यह विचार सब प्रकारसे स्वीकार है और मैंने भी यही विचार किया है। इसलिये मैं राज्यका भार इतने कालतक आपको ही देता हूं, क्योंकि इस समय कार्यके योग्य आप ही हैं, अर्थात् जबतक मेरे इस असाता वेदनीयका उदय है, तब तक मैं अपना राज्य आपके द्वारा ही करूंगा, और इसका क्षय अर्थात् साताका उदय होते ही मैं पुनः आकर राज्य संभाल लूंगा, वहांतक आप ही अधिकारी हैं।

इसलिये आप भले प्रकार प्रजाका पालन-पोषण कीजिये, कि जिससे किसी प्रकारका कोई कष्ट न होने पावे। न्याय और नीतिपूर्वक वर्ताव कीजिये, और मेरी माता कुन्दप्रभाकी रक्षा की पूर्ण व्यवस्था रखिये जिससे उनको मेरा वियोग जनित दुःख न व्यापे। इस प्रकार सब प्रकारसे आदेश शिक्षा देकर राजा श्रीपालने ७०० (सातसौ) वीरोंको साथ लिया और नगरसे बहुत दूर उद्यानमें जाकर डेरा किया।

जब श्रीपालके वन जानेकी खबर प्रजाके लोगोंको मालुम हुई तो घरोंघर शोक छा गया, बस्ती श्रीरहित शून्यसी दीखने लगी, सब लोग इस वियोग जनित दुःखसे व्याकुल हो रुदन करने लगे अस्थायी राजा वीरदमनके भी टपटप आंसू गिरने लगे। माता कुन्दप्रभा तो बावलीसी हो गई। उनको अपने पति अरिदमनकी मृत्युका शोक तो भूला ही न था कि पुनः पुत्रके वियोगका दुःख आ पड़ा। वे गद्गद् स्वरसे विलाप करने लगीं। विशेष कहांतक कहें, शोकके कारण दिन भी रात्रिवत् मालूम होने लगा। यद्यपि वीरदमन राजाने सबको धैर्य दिया, तथापि राजभक्त प्रजाको संतोष कहां? हाय! कर्मसे कुछ वश नहीं है। देखो! कैसी विचित्रता है कि—

पुण्य उदय अरि मित्र ह्वै, विष अमृत ह्वै जाय।
इष्ट अनिष्ट ह्वै परनमैं, उदै पाप जब थाय॥

निदान सब लोग कुछ काल बाद शोक छोड़ निज निज कार्यमें दत्तचित्त हुये। काका वीरदमन राज्य करने लगे, और राजा श्रीपाल उद्यानमें जाकर सातसौ वीरों सहित कर्मोंका फल भोगने लगे।

मैनासुन्दरीका वर्णन

इसी आर्यखण्डमें मालवदेश (मालवा) में उज्जैनी नामकी एक नगरी है। जहांका राजा पहुपाल बहुत ही प्रतापी, शूरवीर, रणधीर, महापराक्रमी और न्यायवान था। वह नीतिपूर्वक प्रजाका पुत्रवत् पालन करता था। जिसके राज्यमें बड़े२ बड़े धनी लोग रहते थे। जिनका [illegible] कुबेरकोष दिखाई देता था। बड़े२ उत्तंग महल ध्वजा तोरण कंगूरों आदिसे सुसज्जित बने थे। नगरका विस्तार १२ कोस लम्बा और

९ कोस चौड़ा था । बहुत दूर २ तक राजाकी आज्ञा मानी जाती थी । वहां कोई दुःखी, दरिद्री नहीं देख पड़ते थे । बागबगीचे, कोट, खाई, सरोवर आदिसे नगरकी शोभा अवर्णनीय हो रही थी । राजाके यहां निपुणसुन्दरी पट्टरानी आदि बहुतसी रानियां थी । पट्टरानी निपुणसुन्दरीके गर्भसे दो कन्यायें हुई ।

एकका नाम सुरसुन्दरी और दूसरीका नाम मैनासुन्दरी था । प्रथम कन्या सुरसुन्दरी केवल संसारी विषयभोगोंकी आकांक्षा करनेवाली और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रको सेवन करने वाली विवेकहीन किन्तु रूपवती थी, और द्वितीय कन्या मैनासुन्दरी जैसी रूपवती थी, वैसी ही गुणवती और परम विवेक जैनधर्ममें अत्यन्त लवलीन थी । इसका चित्त सरल और दयालु था । वचन मधुर नम्र और सत्यरूप निकलते थे, इससे यह सबको प्रिय थी ।

एक दिन राजाने रानीसे सम्मति मिलाकर दोनों पुत्रियोंको पढ़ानेका विचार किया, सो प्रथम ही सुरसुन्दरीको बुलाकर पूछा—हे बाले ! तुम कौनसे गुरुके पास पढना चाहती हो ? तब सुरसुन्दरीने कहा, कि शैवगुरुके पास पढूंगी । यह सुनकर राजाने तुरन्त ही एक शैवगुरुको बुलाकर उसे सब प्रकार संतोषित कर कन्या सौंप दी तब वह ब्राह्मण (शैवगुरु) राजाको शुभाशीर्वाद देकर सुरसुन्दरीको अनेक प्रकार कला चतुराई और विद्याएं सिखाने लगा ।

फिर राजाने द्वितीय कन्याको बुलाकर पूछा—ऐ बाले ! तुम किस गुरुके पास पढना चाहती हो ? तब मैनासुन्दरीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—हे तात ! मैं जिनचैत्यालयमें श्री जिनमती आर्यिकाके पास पढ़ना चाहती हूं । यह सुनकर राजा रानी अति प्रसन्न हुए, और कन्याको लेकर स्वयं अष्ट

प्रकार द्रव्य संजोकर जिन चैत्यालय पधारे । वहां जाकर प्रथम ही श्रीजिनेन्द्रकी भक्तिभावसे पूजा करके फिर वहां पधारे हुए श्रीगुरुको नमस्कार किया । गुरुने धर्मवृद्धि दी । तब राजा और रानीने विनती की—हे स्वामिन् ! इस बालिकाकी इच्छा विद्याभ्यास करनेकी है, इसलिए कृपाकर इसे विद्यादान दीजिये । मैनासुन्दरी भी कर जोड़ प्रार्थना की—हे कृपासिन्धु ! धर्मावतार ! मुझे विद्यादान दीजिये । तब श्रीमुनि बोले कि इस बालिकाको आर्यिकाके पास पढ़ानेको बिठावो। तब राजाने गुरुकी आज्ञानुसार पुत्रीको आर्यिकाजीकी शरणमें छोड़ दिया और रानी सहित स्वगृहको प्रयाण किया । आर्यिकाजीने प्रथम ही उसे ॐकार जो समस्त द्वादशांगका सार है पढ़ाया—

मंगलमय मंगल करन, उत्तम शरणाधार ।
ॐकार संसारमें, पार उतारन हार ॥
ज्ञायक लोकलोकका, द्वादशांगको सार ।
गर्भित पंचपरमेष्ठि अरु कर्म भर्म क्षयकार ॥

इस प्रकार ॐकारसे आरम्भ करके श्री परम तपस्विनी आर्यिकाजीने थोड़े ही दिनोंमें इस कुमारिकाको शास्त्र, पुराण, संगीत, ज्योतिष, वैद्यक, तर्कणशास्त्र, सामुद्रिक, छन्द, आगम, आध्यात्मिक, नृत्य, नाटक इत्यादि सर्व विद्या और मुख्य २ भाषाओंका ज्ञान करा दिया । जब वह सम्पूर्ण कलाओंमें निपुण हो गई, तब श्रीगुरुके निकट निश्चय और व्यवहार धर्म, दो प्रकारका चरित्र, चार ध्यान, षोडशकारण, दशलक्षण, नन्दीश्वर-रत्नत्रयादि व्रतोंका स्वरूप समझा ।

इस प्रकार मैनासुन्दरी जब सब विद्या पढ़ चुकी, तब अपने माता पितादि गुरुजनोंकी यथायोग्य विनय करती हुई कुलीन कन्याओंकी भांति सुखसे कालक्षेप करने लगी और ज्येष्ठ पुत्री सुरसुन्दरी (जो शिवगुरुके पास पढ़नेको गई थी । भी वेद, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक आदि संपूर्ण विद्या पढ़ चुकी । तब वह ब्राह्मण पण्डित उसे लेकर राजाके समीप उपस्थित हुआ और आशीर्वाद देकर कन्या राजाको सौंप दी । इसपर राजाने उसे उचित पुरस्कार (इनाम) देकर संतोषित किया ।

एक दिन राजा सुखासनसे मंत्री आदि सहित बैठे हुए थे कि इतनेमें बड़ी पुत्री आई । राजा उसे तरुणावस्था प्राप्त देखकर पूछने लगे—हे पुत्री ! तेरा लग्न (ब्याह) कहां और किसके साथ होना चाहिए ? तुझे कौन वर पसन्द है ? तब सुरसुन्दरी बोली—पिताजी पुण्यके योगसे ही विद्या, धन, ऐश्वर्य रूप, यौवनादि सब मिलता है सो तो सब आपके प्रभावसे प्राप्त है ही, और लग्नादि कार्य गृहस्थोंके मंगल कार्य हैं इन्हींसे सुखकी प्राप्ति होती है यह भी ठीक है । अच्छा तो यही है कि कन्याओंके योग्य वर पितादि गुरुजनोंके द्वारा तलाश किया जाय, परन्तु यदि श्रीमान मुझसे ही पूछना चाहते हैं तो मुझे कोशांबी नगरीके राजाका पुत्र हरिवाहन जो सर्व गुण संपन्न, रूपवान तथा बलवान है, पसंद है उसीके साथ मेरा लग्न होना चाहिये । तब राजाने यह बात स्वीकार की, और बड़े आनन्द व उत्साहसे सुरसुन्दरीका लग्न (ब्याह) शुभ मुहूर्तमें उसके इच्छित वरके साथ कर दिया ।

इसी प्रकार किसी एक दिन छोटी पुत्री मैनासुन्दरी जब चैत्यालयसे आदीश्वरस्वामीकी पूजा कर गंधोदक लिये हुए पिताके पास आई तो राजाने उसे प्रेमसे आओ बेटी ! आवो ! कहकर बैठनेका संकेत किया । पुत्रीने विनय सहित भेंट स्वरूप

राजाके संमुख गंधोदक रख दिया और स्वयोग्य स्थान पर बैठ गई ।

राजाने पूछा—यह क्या लाई हो बेटी ! पुत्रीने उत्तर दिया—पिताजी ! यह गंधोदक (जिन भगवानके न्हवनका जल) है । इसको शरीर पर लगानेसे अनेकों व्याधियां जैसे कोढ (कुष्ट), दाद, गजकर्ण खाज (खुजली) आदि रोग दूर हो जाते हैं । कैसा ही दुर्गन्धित शरीर हो परन्तु थोडे ही समयमें इस गंधोदकसे अति सुगंधित स्वर्ण सरीखा निर्मल हो जाता है इस गंधोदकको सुरनर विद्याधर मस्तकपर चढाते हैं और अपने आपको इसको प्राप्ति होनेपर कृत कृत समझते हैं । देखिये !

जब तीर्थंकर देवका जन्म होता है, तब इन्द्र प्रभुको सुमेरु पर्वत पर ले जाकर एक हजार आठ कलशोंसे अभिषेक करता है । इस अभिषेकका जल इतना बहुत होता है कि उस जलके प्रवाहसे नदी बह जाती है । परन्तु वहांपर परमभक्त सुरनर विद्याधरोंके द्वारा मस्तकमें लगाते हुवे वह जल बिलकुल शेष नहीं रहता है । कहांतक कहें ? इसकी महिमा अपार है । इससे सब इच्छित फलकी प्राप्ति हो सकती है । इसलिए आप भी इसे वन्दन कीजिये अर्थात् मस्तकपर लगाइये ।

यह सुनकर राजाने सहर्ष गंधोदक मस्तकपर चढाया, और पुत्रीको भक्तियुक्त देखकर प्रसन्न हो प्रेमपूर्वक मस्तक चूंम मधुर वचनोंसे उसकी परीक्षा करने लगा—पुत्री ! पुण्य क्या वस्तु है और वह कैसे प्राप्त होता है ?

मैनासुन्दरी कहने लगी—हे तात ! सुनो—

वीतराग सर्वज्ञ अरु, हित उपदेशी देव ।
धर्म दयामय जानिये, गुरु निर्ग्रन्थकी सेव ॥

पुण्य उदधि यह जानिये, अहो तात गुण लीन ।
स्वर्ग मोक्ष दातार ये, प्रगट रत्न हैं तीन ॥

अर्थात्—अर्हंतदेव, दयामयी धर्म और निर्ग्रन्थ गुरुकी सेवासे ही पुण्यबंध होता है । और तो क्या, इनकी सेवा अनुक्रमसे मोक्षको देनेवाली होती है । राजा पुत्रीके द्वारा अपने प्रश्नका उत्तर पाकर और भी प्रसन्न हुए, और बिना विचारे पुत्रीसे कहने लगे-हे पुत्री ! तू अपने मनके अनुसार जो रूपवान व पराक्रमी वर तुझे पसन्द हो, सो मुझसे कह ! मैं सुरसुन्दरीके समान तेरा लग्न तेरी पसन्दगीसे कर दूंगा ।

यह पिताका वचन मैनासुन्दरीके हृदयमें वज्रवत् प्रतीत हुआ । वह चुप ही रही, कुछ भी उत्तर मुंहसे नहीं निकला । मन ही मन सोचने लगी कि पिताने ऐसे वचन क्यों कहे ? क्या कुलीन कन्यायें भी अपने मुंहसे वर मांगती हैं ? नहीं २ शीलवान कन्यायें कभी नहीं कह सकती हैं ।

यथार्थमें जिसने जिनेन्द्र देवको पहिचाना नहीं और निर्ग्रन्थ गुरु दयामयी धर्म नहीं जाना है उनकी यही दशा होती है । बिना दशलक्षण व रत्नत्रय धर्मके जाने यथार्थमें विवेक नहीं हो सकता । इत्यादि विचारोंमें निमग्न हुई पुत्री, पृथ्वीकी ओर इकटक देखती रही तो भी राजाने इसका भाव न समझा, और फिरसे कहा—पुत्री ! यह लज्जाय बात नहीं है । तूने जो कुछ विचार किया हो अर्थात् जो वर तुझे पसन्द हो सो कह ।

इस प्रकार बारंबार राजाके पूछनेपर वह विचारती थी कि राजाकी बुद्धि कहां चली गई ! जो निर्लज्ज हुये, इस प्रकार फिर फिरसे प्रश्न कर रहे हैं ? यदि इनने हमारे गुरुका वचन सुना ! होता तो कदापि ऐसा वचन मुंहसे नहीं निकालते । इत्यादि । परन्तु जब पिताका विशेष आग्रह देखा तब वह लाचार होकर बोली—

हे पिता ! कुलवन्ती कुमारियां अपने मुंहसे वर नहीं मांगती। माता पितादि स्वजन वा गुरुजन जिसके साथ ब्याह देते हैं, उनके लिये वहीं वर कामदेवके तुल्य होता है। चाहे वह अंधा, लूला, काना, बहरा, पांगुला, कोढ़ी रोगी, राव, रंक, बाल, वृद्ध, रूपवान, कुरूप, मूर्ख, पंडित, निर्दया, निर्लज्ज हो अथवा सर्वगुण सम्पन्न हो, परन्तु उन कुमारियोंके लिए वहीं वर उपादेय (ग्रह योग्य) है। कन्याओंका भला बुरा विचारना माता पिताके आधीन है। वे चाहे सो करें।

मैंने श्री गुरुके मुंहसे ऐसा ही सुना है, और शास्त्रोंमें भी वही कथा प्रसिद्ध है कि कच्छ सुकच्छ राजाकी कन्यायें यशस्वी और सुनन्दा भी जब तरुण हुयीं तो उनके पिताने श्री आदीश्वर (ऋषभनाथ) स्वामीको परणाई थीं और आदिनाथको दो कन्यायें ब्राह्मी और सुन्दरी जब तरुण हुयीं और उनके लग्नका विचार नहीं किया गया तो वे कुमारिकायें समस्त इन्द्रियोंको तुच्छ और दुःखरूप समझकर जिनदीक्षा लेकर इस पराधीन स्त्रीपर्यायसे सदाके लिए छूट गयीं, अर्थात् वे स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुयीं।

इसलिये हे पिता ! अपने मुंहसे वर मांगना अनुचित वा लोक विरुद्ध है। बहिन सुरसुन्दरीने जो वर मांग लिया, सो यह उनकी चतुराई नहीं है, परन्तु वे बेचारी क्या करें ? खोटे गुरु (कुगुरु) की शिक्षा स्वभाव ही ऐसा है। संगतिका प्रभाव अवश्य ही होता है। देखो कहा है—

तपे तवापर आय स्वाती जल बूंद विनट्ठी।
कमल पत्रपर सङ्ग वही मोती सम दिट्ठी॥
सागर समीप भई मुक्ताफल सोई।
संगतिका प्रभाव प्रगट देखो सब कोई॥

नीच संगसे नीच फल, मध्यमसे मध्यम सही ।
उत्तमसे उत्तम मिले, ऐसे श्रीजिन गुरु कही ॥

देखिये–यह जीव भी इस संसारमें अनादि कर्मबंधवशात् स्वस्वरूपको भूला हुवा पर [पुद्गलादि पर्यायों] में आपा भान चतुर्गतिमें भटकता है और उन कर्मोंके उदयजनित फलमें रागद्वेष बुद्धिकर सुख-दुःखरूप इष्टानिष्ट कल्पना करता है तथा उसमें तन्मयी होकर हर्ष विषाद करता है परंतु यह उसकी भूल है । क्योंकि जो कुछ सर्वज्ञने देखा है वह अवश्य होगा । इसलिये समताभाव रखना ही कर्तव्य है । जब कि समीचीन पुरुषको ही कर्मने नहीं छोड़ा, तो हमारे जैसे शक्तिहीन मनुष्योंकी क्या बात है ।

इसलिये हे पिता ! सुरसुन्दरीका वह दोष नहीं था । वह केवल कुगुरुकी शिक्षाका ही फल था । माता पिताका कर्तव्य है कि वे जब अपनी कन्याओंको विवाह योग्य देखें, तब उत्तम कुलवान्, रूपवान्, गुणवान्, अपने बराबरीवाला सुयोग्य वर ढूंढकर उसके साथ व्याह दें । यथार्थमें वे ही कन्यायें प्रशंसनीय हैं जो गुरुजनोंके द्वारा किया हुआ संबंध सहर्ष स्वीकार कर उसीमें संतोष करती हैं । क्योंकि प्रथम तो गुरुजनोंके द्वारा कभी अपनी कन्याओंके साथ अहित होनेकी आशा ही नहीं है और कदाचित् किसी अविचारी माता-पितादि द्वारा भाग्यवश ऐसा ही हो जाय, अर्थात् योग्य वर न भी मीले तो वे उसे पूर्वोपार्जित कर्मका फल जानकर उसी प्राप्त वरकी सेवा करें इसहीमें उनका कल्याण है । संसारमें इष्टानिष्ट वस्तुओंका संयोग कर्मके अनुसार स्वयमेव दौड़ आकर मिल जाता है, इसमें किसीका कुछ दोष नहीं होता है, इसलिये पिताजी ! आपको अधिकार है, आप चाहे जिसके साथ व्याहो ।

यह बात सुनकर राजा क्रोधित होकर बोले—बस बस पुत्री ! चुप रह तेरा उपदेश बहुत हो गया । क्या तेरे गुरुने तुझे यही पढाया है कि अपने उपकारीजनोंके उपकारका तिरस्कार करे ? तू मेरे घरमें तो नाना प्रकारके उत्तम भोजन करती है, वस्त्राभूषण पहिनती है, और सब प्रकार सुख भोग रही है, तो भी कहती है कि मुझे तो सब मेरे कर्म हीसे मिलता है । यह तेरी कृतज्ञता है ।

मैनासुन्दरीने कहा—पिताजी ! मुझका कहना यथार्थ है । आप मनमें विचार देखिये ! मेरा शुभ कर्मका ही उदय था कि आपके घर जन्म मिला और ये सब सुख भोगनेमें आये । यदि मेरे अशुभ कर्मका उदय होता, किसी दरिद्रीके घर जन्म लेती, जहां कि दुःख ही दुःख मिलता । सो वहां तो आप कुछ सुख देने आते ही, नहीं । भला और भी संसारमें अनेक प्राणी दुःखी देखे जाते है, उन्हें व नारकी आदि जीवोंको व देवादिकोंको कौन दुःख व सुख जाकर देता है ? यथार्थमें जीवको उसीका किया हुआ शुभाशुभ कर्म, सुख व दुःखका दाता है ।

राजाको पुत्रीके ऐसे वचन सुनकर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और उसी समय उसने मनमें यह ठान ली कि अब इसके कर्मकी परीक्षा करना चाहिए, जो इतना गर्वयुक्त हो रही है । कुछ देर चुप रहा और उपरी मनसे मैनासुन्दरीकी प्रसंशा करता हुआ उठकर महलोंमें चला गया, और मैनासुन्दरी भी हर्षित होकर अपने महलमें चली गई ।

नगरके लोग पुत्रीको देखकर बहुत ही आनन्दित होते थे । कोई कहते थे, यह देवी है, कोई कहते थे, विद्याधरी है, कोई कहते थे, रति है इत्यादि । सारांश यह है कि इसके रूपके समान और किसी स्त्रीका रूप नहीं था । यह षोडषी (१६ वर्षकी) कन्या वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हुई सुखपूर्वक रहने

लगी, और निरन्तर भोजन तैयार होनेपर श्रीमुनिके आगमन कालका विचार कर द्वारापेक्षण करती और मुनि आदि अतिथियोंको भक्तिपूर्वक आहारादि दान देती, परन्तु यदि समय निकल जाता और कोई मुनि (अतिथि) दृष्टि न पड़ते तब आत्मनिंदा करती हुई (कि हाय ! आज मेरे कोई पूर्वोपार्जित अन्तराय कर्मके उदयसे अतिथिका योग नहीं मिला इत्यादि) एक पुरुषके भोजनके योग्य रसोई निकालकर किसी दिन-दुःखीको देकर करुणादानकी ही भावना भाती हुई भोजनको बैठती ।

इसी प्रकार नित्य प्रति वह कुमारिका षटकर्म देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दानमें सावधान रहती हुई सानन्द कालक्षेप करने लगी ।

=※=

मैनासुन्दरीका श्रीपालसे व्याह

एक दिन राजा पहुपाल (मैनासुन्दरीके पिता) को अकस्मात् मैनासुन्दरीके उन वचनोंका स्मरण आ गया । "कि पुत्री कहती है कर्म ही प्रधान है" और इसलिये वह तुरन्त ही क्रोधयुक्त होकर मन्त्रियोंके साथ पुत्रीके लिए हीन वरकी खोजमें निकला ।

चलते चलते वह उसी चंपापुरके वनमें पहुंचा, जहां राजा श्रीपाल सातसौ सखाओं सहित पूर्वोपार्जित कर्मका फल (कुष्ट व्याधि) भोग रहे थे ।

श्रीपाल राजा पहुपालको आते देखकर स्व-आसनसे उठ खड़े हुये । और यथा योग्य स्वागत करके कुशल समाचार पूछे तथा अपने पास तक आनेका कारण भी पूछा । राजा पहुपालके मन्त्रियोंको यह देखकर विस्मय हो रहा था कि

न जाने राजा क्यों इस कोढ़ीसे मिल रहे हैं, जिनके अंगोपांग सड़कर गिर रहे हैं, महा दुर्गन्धि निकल रही है इत्यादि । कि इतनेमें ही राजा पहुपालने श्रीपालसे कहा-मैं वनक्रीड़ाके लिए आया हूँ, आपका आगमन यहां किस प्रकार हुआ है ? क्यों कर यह नगर बसाया है यह जानना चाहता हूँ ।

तब श्रीपालने आद्योपांत कुछ कथा कह सुनाई । यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर बोला—मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हूँ, आपको जो चाहिये सो मांगो ।

श्रीपालने देखकर कहा—जो आप प्रसन्न हैं, और वर देते हैं, तो आपकी पुत्री मैनासुन्दरी मुझे दीजिये । राजा पहुपालने सुनकर प्रथम तो कुछ मनमें क्रोध किया, पश्चात् मैनासुन्दरीके वाक्योंको स्मरण कर हर्षित होकर बोले— तथास्तु अर्थात् हे कुष्टीराय ! आपको मैंने अपनी लघु कन्या मैनासुन्दरी दी । चलो, शीघ्र मेरे साथ आवो, और कन्याको ब्याह कर सुखी हो । श्रीपाल हर्षित हो राजाके साथ चलनेको तैयार हुये ।

परन्तु ऐसे अवसरमें मंत्रियोंसे भला कब चुप रहा जाता है ? तुरन्त ही गद्गद् हो दिन वचनों द्वारा राजासे प्रार्थना करने लगे--हे नाथ ! बड़ा अनर्थ हो जायेगा । आपको प्रथम ही गुप्त मंत्र कर ऐसा वचन देना चाहिये कहां तो वह षोडश वर्षकी सुकुमारी कन्या और कहां यह कोढ़ी अंगोपांगगलित शरीरी पुरुष ? ऐसा अनमेल सम्बन्ध उचित नहीं । सब लोग हंसेंगे और निन्दा करेंगे ।

हे राजा ! कन्या अपने माता-पिताके अधीन होती है इसलिये उन्हें चाहिए कि योग्यायोग्यका पूर्ण विचार करें । यदि बालकोंसे कुछ अपराध भी हो जावे, तो भी माता-पिता उसे क्षमा ही करते हैं । अपने थोड़ेसे मानादि कषायके वश

हो अपने अधीन जीवोंको कष्ट पहुंचाना, कि जिससे वे सदाके लिये दुःखी हो जावें, कदापि उचित नहीं है ।

नीतिमें भी कहा है कि—क्षत्रियोंका कोप बालक, वृद्ध, स्त्री, निर्बल, पशु, आधीन शरणमें आये हुए और पीठ दिखाने वालोंपर नहीं होता है । चाहे जो हो परन्तु फिर भी ये दयाके पात्र हैं इत्यादि नाना प्रकारसे मंत्रियोंने समझाया, परन्तु होनी अमिट है, राजाके मन एक भी न जंचा । उसने उत्तर दिया—अरे मंत्रियों ! तुम लोग इस विषयमें कुछ नहीं समझते । यथार्थमें ऐसा पुरुष तीन खंडमें तलाश करने पर भी नहीं मिलेगा, सिवाय इसके यह उत्तम कुलीन क्षत्री भी है सब कारबार राजाओं सरीखे ही है । रोग तो शरीरका विकार है । माल, खजाना, सैन्य आदिकी कुछ भी कमी नहीं है । यह पुरुष परम दयालु न्याय नीति आदि गुणोंसे परिपूर्ण है । जैसे अंधेके हाथसे बटेर पक्षीका आना कठिन है, इसी तरह जो इसे छोड़ जाऊं तो फिर ऐसा वर मिलना कठिन है. इसलिये अवसर हाथसे नहीं जाने देना चाहिए ।

मंत्रियोंने पुनः विनय की—हे स्वामी ! स्त्रियोंको धन, वस्त्र, राज्य और ऐश्वर्य आदिका चाहे जितना सुख क्यों न हो परन्तु यदि पतिका सुख न हो तो वह सब कुछ उन्हें तृणके समान है । यथा आपने सीता, द्रोपदी, अंजना आदिकी कथा नहीं सुनी कि जिन्होंने सम्पूर्ण सुखोंपर धूल डालकर केवल अपने पतियोंके साथमें रहकर अनेक प्रकारके कष्टोंका सामना करना ही श्रेयस्कर समझा था, सो क्या उन्हें (स्त्रियोंको) यही सुख नहीं मिला, तो और सुख सब ऐसे हैं—जैसे कठपुतलीको शृंगारना । यद्यपि । श्रीमान्‌का चित्त इस समय किसी कारणसे ऐसा हो गया होगा, परन्तु सोच

बहुत पछतावेंगे। इसलिए सब काम सोच समझकर ही करना चाहिए।

यह सुनकर राजाने कहा—मंत्रियो! तुम्हारा बारंबार कहना उचित नहीं है। मैं कदापि तुम्हारी बात नहीं मानूंगा। क्योंकि मैनासुन्दरीके वचन मुझे तीरके समान चुभ रहे हैं, इसलिये इससे बढ़कर उसके कर्मकी परीक्षा करनेका अवसर दूसरा न मिलेगा। बस जो होना था सो हो गया। अब मेरे वचनको फिरानेकी किसकी ताकत है? ऐसा कहकर तुरन्त ही राजा पहुपाल राजा श्रीपाल कोढीको साथ लेकर स्वस्थानकी ओर विहार किया। कुछ समय बाद वे जब नगरके निकट पहुंचे तो श्रीपालको उनके सातसौ सखों समेत नगरके बाह्य उपवनमें डेरा देकर, आप (राजा) प्रथम ही मैनासुन्दरीके निकट पहुँचा, और हर्षित होकर बोला—

पुत्री! अब भी तुम कर्मका हठ छोड़ो और विचार कर कहो कि कौन वर पसंद है? तब पुत्री बोली—तात! जो मुनि क्रियामें सावधान होकर भी दर्शनभ्रष्ट हो, जो धर्मात्मा होकर दया रहित हों, जो विवेकहीन ध्यानी हों, जो क्रोधी होकर त्यागी रहें, और जो पुत्र गुणवान होकर भी पिताके वचनों लोपनेवाले हों, तो उनके सब गुण व्यर्थ हैं, ऐसे क्रिया, धर्म त्यागादि गुणोंमें कुछ लाभ नहीं है। इसलिये आप चाहें जिससे मेरा पाणिग्रहण करादें वही मुझे स्वीकार है।

राजाको पुत्रीके इन नीतियुक्त वचनोंसे कुछ भी संतोष न हुआ। वह कहने लगे-पुत्री! मैंने तेरे लिए कोढ़ीका तलाश किया है। तू उसे सहर्ष पा ले। मैनासुन्दरी पिताके वचन सुनकर मनमें बहुत हर्षित हो कहने लगी हे तात! कर्मके अनुसार जो वर मुझे मिला वही स्वीकार है। इस जन्ममें तो मेरा स्वामी वही कोढ़ी है। उसके सिवाय संसारके और

पुरुष आपके (पिताके) समान हैं। यद्यपि मैनासुन्दरीने ये वचन प्रसन्न मनसे कहे थे परन्तु राजा को नहीं रुचे।

वह बोला-पुत्री ! तू बहुत ही हठीली है। तेरा स्वभाव दुष्ट है, तू विचारशून्य है, अब भी हठ छोड़ दे, परन्तु मैना-सुन्दरीने तो मनसे श्रीपालको ही वरण लिया था। वह बोली-पिताजी ! आप चिन्ता न करें, कर्मकी गति विचित्र है। शुभ उदयसे अनिष्ट वस्तु इष्टरूप, और अशुभ उदयसे इष्ट भी अनिष्टरूप परिणमती है, इसलिये अब जो कुछ होना था सो हो गया, इसमें कुछ सोचने विचारनेकी आवश्यकता नहीं है।

जब राजाने देखा कि अब तो पुत्री भी हठ पकड़ गई है, तब लाचार होकर ज्योतिषिको बुलाया। और विवाह का उत्तम मुहूर्त पूछने लगी। तब ज्योतिषीने लग्न विचारकर कहा-नरनाथ ! आजका मुहूर्त बहुत ही अच्छा है। ऐसा मुहूर्त फिर बीसों वर्षों तक भी नहीं बनेगा। क्योंकि सूर्य, चन्द्र और गुरु ये तीनों वर और कन्याके लिये बहुत ही अच्छे हैं। ऐसा उत्तम और निकट मुहूर्त सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। और विप्रको दक्षिणा देने लगा-तब उसने हाथ लम्बा नहीं किया, अर्थात् दान नहीं लिया। जब राजाने इसका कारण पूछा, तो वह वर्तमान वरकी स्थिति पर शोक प्रकाशित करके कहने लगा—

हे राजन ! संसारमें प्राणी कर्मसे बंधा हुआ है। आपका इसमें क्या दोष है ? कन्या का भाग्य ही ऐसा है जो रूप और गुणकी खान होते हुए भी कोढ़ीके साथ ब्याही जा रही है। हे राजा ! आपको ही विचार करना चाहिये था। आप ऐसे चतुर, न्यायी और नीतिवान होते हुए भी कैसे भूल गये ?

आपकी बुद्धि कहां चली गयी, जो यह अनर्थ करनेपर उद्यत हो गये ? मालूम होता है कि अब राज्यका कुछ अशुभ होनहार है ।

ऐसा कहकर बिना ही द्रव्य लिए यह ब्राह्मण घरको चला गया । अब क्या था, सब नगरमें तथा आसपास चारो ओर सोते, बैठते, खाते, पीते हर समय यही कथा होने लगी । जो कोई इस बातको सुनता था, वही राजाकी बुद्धि को धिक्कारता था ।

जब विवाह कार्य आरम्भ होने लगा, तब पुनः मंत्रियोंने आकर निवेदन किया कि हे राजन् ! देखो अनीति होती है, इसका परिपाक अच्छा नहीं है । एक अबला बालिकाके साथ ऐसा अनर्थ करना सर्वथा अनुचित है । आप प्रजापालक है, फिर तो यह आपकी तनुजा है ।

देखिये, विचारिये जो राजा मंत्रियोंके वचन पर विचार नहीं करते हैं, जो सुभट रण त्याग कर भागते हैं, जो शूर-वीर क्रोध छोड़ देते हैं, जो साधु क्रोध धारण करते हैं जो दाता विवेकहीन होते हैं, जो साधु वाद करते हैं, जो रोगी उदास रहते हैं, जो चोर अपना भेद बता देते हैं, जो रोगी स्वादके ग्राही होते हैं, जो साधु उधार लेन देन करते हैं, जो वेश्या व्रत लेकर बैठती है, जो स्त्रियां स्वतन्त्र हो घरोंघर डोलती हैं, जो पात्र क्रिया रहित होते हैं, और जो तपस्वी लोभी होते हैं वह अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं । इसलिए बहुत क्या कहा जाय ? अब भी चेत जाओ और पुत्रीको दारुण दुःखमें डालनेसे बचाओ ।

हे महाराज ! अबतक तो आप सदैव मंत्र (विचार) के

अनुसार चलते थे, परन्तु आज क्या हो गया है ? जो ऐसो रूप और गुणों की खानि पुत्रीको एक कोढ़ी पुरुष को दे रहे हो ? हम लोग आपसे सत्य और आग्रहपूर्वक कहते हैं कि इसके बदले आपको बहुत दुःख उठाना पड़ेगा इसलिए आप हठ छोड दीजिये ।

यह सुनकर राजा कहने लगा-हे बुद्धिमान मंत्रियों ! तुम बिना विचारे हो क्यों व्यर्थ बकवाद करते हो ? मैं जो तिलक कर चुका हूं, क्या वह भी कोइ फिरा सकता है ?नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता । जो कह चुका हूँ, वही होगा । राजाओंके वचन नहीं जाते, चाहे प्राण भले ही चले जांय । कहा है—

"सिंह लगन कदली फलन, नृपति वचन इकवार ।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार ।"

मंत्रियोंने फिर भी साहसकर कहा—

हे राजा ! आपका कुल अति निर्मल है उसको आप कलंकित न करें । यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर व्यर्थ अपयश लेना ठीक नहीं है । आपके जैसा निंद्य कार्य कोई अविवेकी भी नहीं करेगा । इसलिये ऐसा नीच कृत्य आपको कदापि काल नहीं करना चाहिए । यद्यपि मंत्रियों का कहना राजाके हितके ही लिये था, लेकिन जैसे पित्त ज्वरवालेको मिठाई भी कड़वा मालूम होती है, उसी प्रकार हठ रोगसे पीडित तीव्र कषायके उदयमें राजाको मंत्रियोंके वचन बहुत ही बुरे मालुम हुए । वह क्रोधसे भरे हुए लाल२ नेत्र करके बोला बस, बस, बहुत हुआ, चुप रहो ! अब तक मैंने तुम्हारा मान रखा, और कुछ भी नहीं कहा । मेरे मनमें कुछ और है और तुम लोग कुछ और ही कहते हो । सेवकका काम है कि स्वामीकी इच्छानुसार प्रवर्ते । यदि अब तुम लोग कुछ भी विरुद्ध बोलोगे, तो दण्डके भागी होवोगे ।

मंत्रीगण राजाके क्रोध भरे वचन सुनकर बोले-हे महाराजा ! हम लोग निर्भय होकर प्रार्थना करते हैं। हम लोगोंको दण्डका कुछ भी भय नहीं होता, क्योंकि हमारे कुलकी यह रीति है कि स्वामीका हित जिस प्रकार होता देखें, उसी प्रकार कार्य करें, और अयोग्य प्रवृत्तिको यथाशक्ति रोकनेका पूर्ण प्रयत्न करें ! यदि हम लोग ऐसा न करें, तो हमारे कुलकी रीति तथा धर्म जाता है और हम कर्तव्यसे च्युत हो जाते हैं। इसी प्रकारसे राजाओंका भी यही स्वभाव होता है कि उनको जब कि कोइ विशेष कार्य करना होता है, तब मंत्रियोंको बुलाकर उनसे मंत्र करते हैं और सब मिलकर जो राय अधिक प्रशंसनीय होता है, उसीके अनुसार कार्य करते हैं।

यही रीति परम्परासे चली आती है इसीसे हम लोग बारम्बार कहते हैं। इसमें हमारा कुछ भी दोष नहीं है। स्वामीके कार्य करनेमें हमें जीने और मरनेका कुछ भी संशय नहीं रहता है। हे राजन् ! विचार कीजिये, और हठका परित्याग कीजिये।

इस प्रकार मंत्रियोंने यद्यपि बहुत समझाया, परन्तु राजाके चित्त पर एक भी बात न जमी, जैसे चिकने घड़ेपर पानी नहीं ठहरता है। वह निःशंक होकर बोला-अरे मंत्रियों ! अब चतुराई करने का समय नहीं है। आप लोग शीघ्र ही मेरी आज्ञानुसार विवाह की तैयारी करो, मैनासुन्दरीके वरकी शोभा (व्याहका एक नेग है जो अगवानीके समय एक सुन्दर बैल सजाकर उस पर बहुत सुवर्ण मुद्रायें तथा अन्य रत्नादि लादकर वरको भेंट स्वरुप देते हैं) पहुँचावो।

तब लाचार होकर मंत्री अपनासा मुंह लेकर उठ खड़े हुए, और आज्ञानुसार विवाहोत्सवका प्रबन्ध करने लगे, सो ठीक ही है। कहा है—

नौकर बन्धु वा भामिनी, ऋणी कर्मयुत जीव ।
ये पांचों संसारमें परवश भ्रमैं 'सदीव' ॥

इस प्रकार वे मंत्री लोग तथा स्वजन परजन सभी राजाज्ञासे विवाहोत्सवमें सम्मिलित हुए, और विविध प्रकारके मंगलगान नृत्य वादित्रादि होने लगे । सभा मण्डप सुवर्ण और रत्नोंसे सजाया गया । जिसमें मोतियोंके बन्धनवार (तोरण) लटकाये गये । विवाह मण्डप हरे बांस पल्लव और पुष्पोंसे सजाया गया । सुवासन (सौभाग्यवती) स्त्रियां मोतियोंके चूर्णसे चौक पूरने लगी, इत्यादि यह सब कुछ होता था, परन्तु जैसे जलमें रहते हुए भी कमल जलसे भिन्न ही रहता है, उसी प्रकार इन सब उत्सवमें सम्मिलित होनेवालों की दशा थी । सभी लोग राजाकी बुद्धिको मन ही मन धिक्कारते और कन्याकी दशाका विचार कर करुणार्त हो रहे थे । कहीं बाजे बजते थे और शोकागारसा बन रहा था तात्पर्य-वह एक ऐसा विचित्र आश्चर्यकारक अवसर था कि नवागन्तुक पुरुष (जो इस भेदको न जानता हो) की बुद्धि बड़े गोरखधन्धेमें पड जाती थी । वह यह नहीं जान सकता था, कि यह विवाहोत्सव है या कोई शोकसमारोह है ।

यद्यपि विवाहकी तैयारियां जैसी राजाओंके यहां होनी चाहिये सब वैसी ही संपूर्ण प्रकारसे हुई थी, परन्तु कन्याके भविष्यका विचार मनमें उत्पन्न होते ही वह सब रागरंग भूल जाता था । सब लोग चिन्तित थे, परन्तु राजा पहुपालको तो यह पड़ रही थी कि कब फेरे फिरें । कारण कि कहीं विघ्न न आ जावें । इसलिये वह मंत्रियोंसे बोला-मंत्रियों ! मुहूर्त आ पहुचा है । तुम लोग शीघ्र ही जाकर वरको सादर ले आओ । मेरा चित्त अत्यन्त विह्वल हो रहा है कि कब जवाईको देखूं ? और उसकी यथाशक्ति शुश्रूषा करूं ।

मंत्रीगण जो अपने सब उपाय करके निष्फल हो चुके थे सो बिना कुछ कहे ही आज्ञानुसार वहां पहुचे, जहां कुष्टीराज श्रीपालको डेरा दिया गया था, और बड़े समारोहसे वर राजाको ले आये। जो लोग अगवानीको गये थे वे वरको देख देखकर राजाको मन ही मन धिक्कारते और उसकी हंसी करते थे। राजा पहुपालने किसीकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर बड़े आदरसे जवांईका आगे जाकर स्वागत किया, और उच्चासन देकर बैठाया, तथा उबटन कराकर क्षीर नीर तथा सुगन्धसे भरे हुए कंचनके कलशोंसे अभिषेक कराया। नाना प्रकार तेल, फुलेल, अगरजा, इत्र आदि शरीरमें मर्दन किए, परन्तु जैसे मैले वर्तन पर कलई नहीं हो सकती, उसी प्रकार इन उपचारोंसे श्रीपालके शरीरकी दुर्गन्धी कुछ भी कम न हुई।

निदान वरको वस्त्र, आभूषण, और मुकुट, कंकण, जामा इत्यादि सब कुछ पहिराए गये, परन्तु उस समयका यह सब शृंगार ऐसा था, जैसे बन्दरको शृंगारना, क्योंकि एक ओर वस्त्राभूषणोंकी कान्ती जगमगाती थी तो दूसरी ओर पीप और रुधिरकी धार बह रही थी। इस प्रकार वर घोड़े पर सवार होकर विवाहमण्डपमें आया। कामनी घोरीं बनरा (फेरे फिरनेके पहिलेका गीत) गाने लगीं। उसी समय बहुत भीड़ थी। कारण कि एक तो राजघरानेका उत्सव और दूसरे यह विचित्र गोरखधंधा। उस समय वहां उस बड़ी भीड़में लोगोंके मुंहसे नाना प्रकारके भाव प्रकट होते थे। किसीके चेहरेसे शोक, किसीकेसे चिन्ता, किसीकेसे भय, किसीकेसे ग्लानि, किसीकेसे आश्चर्य, किसीकेसे क्रोध और किसीकेसे विरागतासी झलकती थी। सभी लोग विचारोंमें निमग्न हो रहे थे। और कितने ही लोग केवल कौतुकरूपसे ही सम्मिलित

हुये थे । अतएव उन्हें क्या, चाहे किसीका बुरा हो या भला, अपने कौतुकसे काम । उस समय वहां इतनी भीड़ हुई कि आकाश धूलसे आच्छादित हो जानेसे सूर्यका प्रकाश भी ढंक गया, मानो, कि सूर्य लज्जासे ही छिप गया हो, किसीका कुछ भी भाव हो, परन्तु श्रीपालके आनन्दका तो ठिकाना नहीं था सो ठीक ही है ।

जिस स्त्री रत्नके लिए संसारमें वीर परस्पर घात करके तन, धन और प्राणोंका नाश कर बैठते हैं, यदि वही स्त्री-रत्न ऐसी अस्वस्थ अवस्थामें भी बिना प्रयास प्राप्त हो जावे तो फिर भला क्यों न हर्ष हो ? होना ही चाहिये । इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें गृहस्थाचार्यने विधिपूर्वक पंचपरमेष्ठी, अग्नि और पंच आदिकी साक्षीपूर्वक दोनोंका पाणीग्रहण करा दिया । जब विवाहकी विधि हो चुकी, तब मैनासुन्दरी अपने पतिके साथ उनके आश्रम को पहुचाई गई । जो लोग भी पहुँचाने गये थे, उन सबके चेहरेसे उस समय तक भी शोक भय, लज्जा आदि भाव प्रदर्शित होते थे । प्रथम तो पुत्रीको विदाई (जुदाई) ही दुःखदाई होती है, तिस पर उसको ऐसे दुनिवार दुःखका होना ।

इसीसे सब लोगोंकी आखोंसे अश्रुपात हो रहे थे ऐसा मालूम होता था कि मानों श्रावण भादोंकी वर्षाकी झडी ही लग रही हो । राजा पहुंपाल स्वयं चित्तमें बहुत खेदित और लज्जित हुए, परन्तु क्या करें ? कर्मकी रेखा पर मेख मारने की किसका सामर्थ्य है ? किसीके मुंहसे शब्द नहीं निकलता था । चारो ओर हा, हा खेदकी ध्वनि हो रही थी । रानी (मैनासुन्दरीकी माता) तथा बड़ी बहिन मैनासुन्दरीके गलेसे लिपटकर जोर जोरसे रुदन करके कहने लगी —

हाय पुत्री ! तूने न मालुम पूर्व जन्मोंमें कैसे २ कर्म किये थे, जिनसे इस अथाह दुःख-सागरमें तू डुबोई गई ! हाय ! तू कैसे इस आयुको पूर्ण करोगी ? हाय ! पुत्री ! क्यों तूने इच्छित वर न मांग लिया ? हाय ! कहां तू महा-सुकुमारी बालिका और कहां वह कोढ़ी पति ? अरे निर्दयी कर्म ! किंचित् भी दया नहीं आई भला, अबलापर तो यह अन्याय न करता ।

हे स्वामी ! आप दयासिन्धु प्रजापालक थे, परन्तु आपके दया-क्षमा संतोष आदि गुण कहां चले गये ? अयुक्त कार्य क्यों किया ? उस समयके इनके रुदनको सुनकर पत्थर भी पिघल जाता तो मनुष्यकी बात ही क्या है ?

राजा पहुपाल स्वयं नेत्रोंमें आंसू भर गद्गद् कंठसे रुदन कर कहने लगे-हाय कुमति ! तुझे और कहीं ठिकाना न मिला, जो आकर मेरे ही हृदयमें वासकर, एक भोली कन्या को ग्रास बना लिया ! हाय ! मैंने हठात् मन्त्रियोंके वचन नहीं सुने, उनका ही तिरस्कार कर दिया ? पुरोहितजीके समझाया तो भी न माना । मैंने अपने थोड़ेसे मिथ्याभिमानके वश होकर पुत्रीको आजन्मके लिए दुःखी किया ! हाय मैना ! क्या करूं ? निःसंदेह तेरा कहना सत्य है । वास्तवमें तेरे पूर्वोपार्जित कर्मोंका उदय ही ऐसा था, जिसका मैं निमित्त बन गया । अब क्या करूं ? हे पुत्री ! तू अपने इस कठोर-हृदय अपराधी पिताको, अपनी उदारतासे क्षमा कर !

जहां इस दृश्यको देखकर कठोरसे कठोर हृदयी पुरुष भी एकबार जी खोलकर रो देता, वहां उस सती शीलवती सुन्दर कोमलांगी बालिकाके चेहरेपर अपूर्व खुशी झलक रही थी ।

वह इन सब दर्शकोंकी चेष्टापर घृणा प्रकट करती हुई सोचती थी कि न मालूम क्यों ये लोग ऐसे शुभ अवसरपर

अमंगलसूचक चिह्न प्रकट करते हैं ? क्यों नहीं शीघ्र ही मेरी विदा कर देते ? क्योंकि ज्यों-ज्यों ये लोग देरी कर रहे हैं त्यों२ मुझे स्वामीकी सेवामें अन्तर पड़ रहा है और साथ ही मेरे भाग्यको दोष देते हुये मेरे पतिके लिए काडा आदि निंद्य वचन कह रहे हैं । जब उससे नहीं रहा गया तब दीर्घस्वरसे बोली—

"हे माता, पिता, बन्धु आदि गुरुजनों ! यद्यपि आप सब लोग मेरे शुभचिन्तक हैं, और अबतक आप लोगोंने जो कुछ भी मेरे लिए किया, वह सब मेरे सुखके हेतु था, परन्तु अब आप लोगोंके ये वचन मुझे शूलसे भी तीक्ष्ण मालूम होते हैं । मैं अपने पतिके लिए ये वचन सुनना नहीं चाहती । क्या आप लोग नहीं जानते कि स्त्रीका सर्वस्व पति ही है ? जो सती, शीलवती, कुलवती स्त्रियां हैं, वे अपने पतिके लिए ऐसे वचन कदापि काल सुन नहीं सकती हैं । स्त्रियोंको उनके कर्मानुसार जैसा वर प्राप्त हो जाय वही उनको पूज्य और प्रिय हैं । उसके सिवाय संसारमें उनके लिए अन्य सब पुरुष मात्र कुरूप अथवा पिता भ्राता व पुत्र तुल्य हैं ।

यद्यपि आप लोग मेरे पतिको कुरूप और रोग सहित देख रहें हैं, परन्तु मेरी दृष्टिमें वे कामदेवसे किसी प्रकार भी कम सुन्दर नहीं हैं । व्यर्थ आप लोग पश्चात्ताप कर रहे हैं मुझे संतोष है, और मैं अपने भाग्यकी सराहना करती हूं कि जो ऐसे शूरवीर पराक्रमी सर्वगुण सम्पन्न रूपवान वरकी प्राप्ति हुई है ।

यदि शुभोदय होगा, तो थोडे ही समय बाद आप लोग इन्हें देव गुरु धर्मके प्रसादसे रोगमुक्त देखेंगे । इसलिए आप लोग शांति रखें, किसी प्रकार चिन्ता न करें, संसारमें सब

जीव कर्माधीन है । सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख । इसी प्रकार संसारका चक्र चलता है । जो कर्म आता है, उसकी निर्जरा भी होती है ।

मनुष्यका कर्तव्य है कि उदयजनित अवस्थाको पूर्व कर्मका फल समझकर समभावोंसे भोगे, न कि उसमें हर्ष विषाद कर संक्लेश भावोंसे आस्रव व बन्ध करे । समता भावोंसे शीघ्र ही कर्मोकी निर्जरा होती है और पुण्य कर्मोमें स्थिति और अनुभाग बढ़ जाता है । और यदि हर्ष विषादकर भोगता है, तो उदयजनित कर्मोका फल कम तो होता नहीं है, किन्तु विशेष दुःखप्रद मालुम होता है और तीव्र कषायोंके द्वारा पुनः अशुभ कर्मबन्ध करके आगेके लिए दुःखका बीज बोता है, क्योंकि जीव कर्म भोगनेमें परतन्त्र है, परन्तु कर्म करनेमें स्वतन्त्र है । सो उसे चाहिये कि कर्म करते समय सावधान रहे ताकि अशुभ कर्म बन्ध न पावें और कर्मफलको समभावोंसे सहन करे, ताकि यहां भी भोगनेमें अतिशय कष्ट न मालूम होवे और आगामी आस्रव तथा बन्धका कारण भी न हो ।

हे स्वजनगणों ! किसीको सुख दुःख देनेवाला संसारमें कोई भी नहीं है । केवल संसारी जीवोंको उनके अन्तरंगमें उत्पन्न हुई इष्टानिष्ट कल्पना ही सुख दुःखका मूल कारण होती है, क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो वस्तु एकको इष्ट है वही वस्तु किसी दूसरेको अनिष्ट मालुम होती है । यदि कोई वस्तु इष्ट व अनिष्ट होती, तो वह सबको समान रूपसे इष्ट व अनिष्ट होना चाहिये थी, सो ऐसा तो नहीं देखा जाता ।

देखिये, जिस महान पुरुषोंको आप लोग अनिष्ट बुद्धिसे देखते हैं, वहीं पुरुष मुझे इष्ट प्रतीत होता है, इसलिये आप लोग इस चर्चाका यहां अन्त कर दीजिये और आगामी अपना समय इस प्रकारकी चिन्तामें न बिताईये मेरी सबसे यही प्रार्थना है इसमें मेरे पिताजीका दोष किंचित् मात्र भी नहीं है, इसलिये कदापि आप लोग उनको कुछ भी कहकर व्यर्थ क्लेशित न कीजिये ।

पुत्रीके ऐसे आगमानुकूल गम्भीर वचन सुनकर सब ओरसे धन्य धन्य की ध्वनि होने लगी, सबको सन्तोष हुआ । और सब लोग अपने२ स्थानोंको पधारे । राजाने भी कन्याको बहुत कुछ दान दहेज आदि देकर विदा किया । यद्यपि विस्तारके भयसे सब दहेजका वर्णन नहीं हो सकता है, तौ भी थोड़ासा कहते हैं ।

राजा पहुपालने विदाके समय सब स्वजन, परजन व पुरजनोंको इच्छित भोजन, और अपने जंवाई राजा श्रीपालको छत्र, चमर, मुकुट, आदि अमूल्य रत्नोंसे सुसज्जित किया तथा पांचों कपडे पहिराये । पुत्रीको सम्पूर्ण प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र आभूषण दिये और साथमें सेवा करनेके लिए हजारों दास दासियां, हाथी, घोडे, रथ, प्यादे पालकी, गाय, भैंस और ग्राम, पुर, पट्टन आदि दिये, तथा क्षमा मांगकर उनको विदा किया ।

कुछ समय तक नगरमें यही चर्चा रही । फिर ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों लोग इस बातको भूलने लगे । सो ठीक ही है—

"कोइ किसीके दुःखको, नाहीं सकत बटाय ।
जाको धी भूमी गिरी, सो ही लूखो खाय ॥"

श्रीपालका कुष्ट रोग दूर होना

जबसे श्रीपालजी मैनासुन्दरीको बिदा कराकर घर लिवा-लाये तभीसे उनको सौख्यके चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे-ठीक है—

शीलवान् नर जहां जहां जाय, तहां तहां मंगल होत बनाय।

मैनासुन्दरी तन, मन वचनसे ग्लानि रहित होकर पति सेवामें लीन हो गई। वह पतिपरायणा अपने हाथोंसे पीप रुधिर इत्यादि धोती, पट्टी बांधती, स्नान कराती, उबटन लगाती, लेप करती, कोमल शय्या बिछाती, वस्त्र बदलाती, प्रकृति और रुचिके अनुसार पथ्य भोजन कराती और श्रीजीसे निरन्तर रोगकी निवृत्तिके लिए प्रार्थना करती थी। नित्यप्रति अतिथियोंको भोजन करानेके पश्चात् पतिको भोजन कराकर पीछे आप भोजन करती। रात्रिको भी जागरण कर पतिसेवा में तत्पर रहती। इस प्रकार जब वह कोमलांगी दिन-रात कठिन परिश्रमपूर्वक पतिसेवा किया करती थी, तब उसे इस प्रकार उद्यमवंत देखकर एक दिन श्रीपालजी बोले—

प्रिये ! कहां तो तुम अत्यन्त कोमलांगी निर्मल शीलादि गुणों और सुरूपकी खानि हो कि तुम्हारे मुखको देखकर चन्द्रमा भी शर्मा जाता है। तुम्हारे मधुर शब्द कोयलको भी मोहित करनेवाले हैं। तुम्हारी ग्रीवा मोरसे भी अधिक शोभा दे रही है, नेत्र मृगीसे भी अधिक भोलापन प्रगट करते हैं। कपोल विकसित गुलाबकी कलीकी शोभाको हरनेवाले हैं। नासिका तोतेकी चोंचके समान, होठ अरुण कुसुमकी नाईं शोभा देते हैं। दांतोंकी पंक्ति मोतियों कैसी आभा प्रकट करती है कुच सुवर्ण कलशोंकी उपमाको धारण करते हैं कटि केहरीके समान कृश, जंघा केलेके स्तंभ समान कोमल चाल हंसकी

कीसी, स्पर्श रुईसे भी कोमल, महा सुगन्धित शरीर और कांतिमान तेजस्वी तुम्हारी छवी है, और कहां मैं अत्यन्त कुरुप, कुष्ट व्याधिसे पीडित महा दुर्गन्धित शरीरका धारी हूं।

इसलिये हे प्राणवल्लभे ! जब तक मेरे इस अशुभ कर्मका उदय है, तबतक तुम दूर रहो । यह राध रुधिर पांछते हुए तुमको मैं नहीं देख सकता हूं । मुझे तुमको इस प्रकार सेवा करते देखकर बहुत करुणा लज्जा और खेद उत्पन्न होता है, कि तुम जैसी सर्वगुणसम्पन्न स्त्रीको मेरे जैसा रोगी भरतार मिला । इसलिए मेरे जब तक असाता कर्मका उदय है, तब तक तुम अलग रहकर ही सुखसे काल व्यतीत करो । यद्यपि श्रीपालजीके द्वारा ये वचन मैनासुन्दरीके लिए हित और करुण बुद्धिसे ही कहे गये थे, परन्तु उस समय वे उसे तीक्ष्ण तीरके समान प्रतीत हुए क्योंकि—

'पति निंदा अरु आप बड़ाई, सह न सके कुऊवती लुगाई ।'

यह मंद स्वरसे बोली—नाथ ! मुझे आपके ये शब्द सुहावने नहीं लगे । क्या दासीसे कोई अपराध बन गया है या सेवामें त्रुटी पाई गई है जो ऐसे तिरस्कार युक्त वचन कहे गये हैं । प्राणनाथ ! क्या स्वप्नमें भी मैं आपको छोड सकती हूं ? क्या छाया शरीरसे, चांदनी चन्द्रमासे, धूप सूर्यसे, उष्णता अग्निसे, और शीतलता हिमसे कभी पृथक् हो सकती है ? नहीं कदापि नहीं चाहे अचल सुमेरु चल जावे, चाहे सूर्य परिवर्तनसे उदय होकर पूर्वमें अस्त होवे और चाहे जलमें अग्निवत् उष्णता हो जावे, तो भी शीलवान् स्त्रियां पति सेवासे विमुख नहीं हो सकतीं ।

स्त्रियों को संसारमें एक मात्र सुखका आधार उनका पति ही होता है, और यदि पति ही तिरस्कार करे तो फिर

संसारमें कौन उन्हें अवलम्बन देनेवाला है ? जैसे डालीसे चूका बन्दर और वृक्षसे टूटा फल इनको कोई सहायक नहीं होता वैसे ही

पतिसे विमुख स्त्रियोंको भी कोई सहायक नहीं होता है।

पुराणोंमें सीता, द्रोपदी, सुलोचना आदि सतियोंकी कथाएं प्रसिद्ध हैं कि जिन्होंने और सुखों पर धूल डालकर पतिके साथ जंगल, पहाड़ोंमें शेर, बाघ स्याल प्रभृति हिंसक पशुओंका सामना करते हुए, कंकर पत्थरोंकी ठोकर खाकर, कांटोंपर चलना स्वीकार किया था परन्तु पतिका साथ छोड़ना किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया।

इसलिये हे प्रियतम ! मैं एक क्षणभर भी आपको ऐसी अस्वस्थ अवस्थामें छोड़कर अलग नहीं रह सकती। मैं आपको अपना भर्तार बनाकर अपने आपको बड़ी भाग्यवती समझती हूं। संसारमें वे ही स्त्रियां धन्य हैं कि जिन्होंने कुछ भी पति-सेवा की है।

प्राणपति ! मेरी दृष्टिमें तो आपसे अधिक रूपवान्, गुणवान्, धैर्यवान, बलवान मनुष्य कोई भी संसारमें नहीं दीखता। मेरे नेत्र तो आपको देखकर ही प्रफुल्लित होते हैं। मेरा हृदय तभीतक पवित्र है, जबतक आपके पद प्रक्षालन करती हूं। तभीतक धन्य हूं जबतक आपकी सेवा करती हूं। जो स्त्रियां शील रहित हैं, पतिकी निन्दा करनेवाली हैं, उनको धिक्कार है। शीलव्रत ही जगतमें प्रधान रत्न है।

शीलवान् नर नारियोंके देव भी किंकर होते हैं। और गृहस्थ स्त्रियोंका शीलव्रत स्वपतिकी अनुचरी होकर रहना ही है। इसलिये ऐसे पवित्र शीलधर्मको मैं कदापि नहीं छोड़ सकती। शील ही मेरा रूप है, शील ही आभूषण और शील

ही शृंगार है और शीलहासे जीना है । इसलिए चाहे सर्वस्व चला जाय, परन्तु यदि शील बच गया, तो कुछ भी नहीं गया समझना चाहिए । इसलिए हे प्राणाधार ! मेरी यह प्रार्थना है कि दासीको सेवासे विमुख न कीजिए। इस समय आपको सेवासे बढ़कर आनन्द मुझे संसारमें और कुछ हो ही नहीं सकता ।

श्रीपाल अपनी प्रियतमाके ऐसे वचन सुनकर रोम२ हर्षित होकर गद्गद् वाणीसे प्रशंसा करने लगे । वे कहने लगे कि हे गुणनिधे ! तू धन्य है जो तेरे हृदयमें शीलकी प्रतिष्ठा है । और मेरा भी भाग्य धन्य है जो तुझसी रुप शील व गुणकी खानि पत्नी मुझे मिली । इसप्रकार परस्पर वार्तालाप होता रहता था निःसंदेह कर्मकी गति अरोक व अमिट है । इसीका विचारकर वे दम्पति परस्पर वार्तालापमें समय व्यतीत करने लगे ।

सत्य है, कर्मने किसीको भी नहीं छोडा, और तो क्या, वह श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामीपर आक्रमण किए बिना न रहा । यह बात अलग है कि सबलसे बैर करनेसे हार खाकर मरना पडा । और देखो-सीता, द्रोपदी, अंजनी, रावण, राम बाहुबलि, भरत आदि जो बडे२ बली और पराक्रमी नररत्न थे उनको भी जब कर्मने नहीं छोडा, तब फिर हमारी तो बात ही क्या है ? हां ! एक उन्हीं पर उसका जोर नहीं चलता जिन्होंने इसको सम्पूर्ण प्रकारसे निर्मूल कर दिया है । अहा ! हम भी उन्हींका (कर्म रहित सिद्ध परमेष्ठीका) शरण लेवें तो निश्चय है कि शीघ्र ही कभी हमारे भी कर्मोंका अन्त आवेगा । ऐसा विचार होते ही वे दोनों प्रफुल्लित चित्त होकर श्रीजीके गुणानुवाद गानेमें निमग्न हो गये, ठीक है—

कर्म असाता अंत हुँ, उदै जु साता आय।
तब सुध बुध सब ऊपजै, आप हि बनै उपाय॥

पश्चात् वे दोनों (दम्पति) उठे और बडे उत्साहसे स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिने, और प्रासुक अष्ट द्रव्य लेकर श्री जिन चैत्यालयको वन्दनार्थ गये। सो वहां पहुंचकर प्रथम ही 'ॐ जय ३ निःसहि निःसहि निःसहि' कहकर मन्दिरके अन्दर प्रवेश किया। और फिर तीन प्रदक्षिणा देकर श्री जिनेन्द्रकी शांत मुद्राको देखकर परम शांतभावको प्राप्त हो स्तुति करने लगे—

शांति छबी मन भाई स्वामी तेरी, शांत छबी मन भाई। टेक
दर्शन मिथ्या तिमिर नाश हो, स्वपर स्वरुप लखाई।
परसत परम शांतिता उपजत, अरचत मोह नशाई। स्वामी०।
दोष अठारह रहित जिनेश्वर, सब जीवन सुखदाई।
आप तिरे पर तारण कारण, मोक्ष राह बतलाई। स्वामी०॥
तुम गुणमाल चितारत ही चित, कठिन कर्म कट जाई।
'दीप' जगत जन भव तट पायो, शरण तुम्हारे आई। स्वामी०।

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् वहां पर विराजमान श्री निर्ग्रन्थ गुरुके चरणकमलोंमें नमस्कार कर दम्पत्ति अपने असाता वेदनीयके नाश होनेके निमित्त विनयपूर्वक इस प्रकार पूछने लगे—

हे स्वामी! आपके निकट शत्रु और मित्र सब समान हैं। मिथ्यात्वरूपी अंधकारसे अंध हुए जीवोंको ज्ञानांजन द्वारा सनेत्र करनेको आप ही समर्थ हैं, हम लोग तो कर्मके घेरे हुए चतुर्गतिरूप संसारमें भटक रहे हैं, और उन्हीं कर्मोके

शुभाशुभ फलमें मोहके उदयसे इष्टानिष्ट कल्पना कर रहे हैं। इसलिये ही हमको सत्यार्थ मार्ग नहीं सूझता। हम लोग हीन शक्तिके धारक इस जड़ शरीरमें ही सुख व दुःखोंका अनुभव कर रहे हैं। और इतने कायर हो रहे हैं कि थोड़ी भी वेदना नहीं सह सकते। इसलिए इस रोगके प्रतीकारका कोई उपाय हो तो कृपाकर बतलाइये। तब मुनिराज बोले- वत्स! सुनो।

॥ बसन्ततिलका छन्द ॥

धर्मे मतिर्भवति किं बहुभाषितेन।
जीवे दया भवति किं बहुभिः प्रदानैः।
शांतिर्मनो भवति किं धनदे चतुष्टे।
आरोग्यमस्ति विभवेन तदा किमस्ति॥

अर्थात्-जिसकी बुद्धि धर्ममें है, तो बहुत कहनेसे क्या है? जिसके अन्तरंगमें जीवोंकी दया वर्तमान है उसे और दानोंसे क्या है? यदि संतोष चित्तमें है तो कुबेरकी लक्ष्मीसे क्या है? और शरीर निरोग है तो और विभूतिसे क्या प्रयोजन है? और भी—

॥ इन्द्रवज्रा ॥

बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च देहस्य सारं व्रतधारणं च।
अर्थस्य सारं किल पात्रदानं, वाचः फलं प्रीतिकरं नराणाम्॥

अर्थात्-बुद्धिका फल तो तत्त्वोंका विचार करना देहका फल व्रत धारण करना. धनका फल पात्रदान करना और वाणीका फल हितमित वचन बोलना है। इसलिए हे भव्यों! भगवानने जो दो प्रकारका धर्म कहा है-एक अनगार-साधुका और दूसरा सागार-गृहस्थका, सो भवसमुद्रके तटपर आये

तरह कुछ दिन सुखके साथ बीतने पर मुनिराजके कहे अनुसार उसको पुत्र हुआ, जिनका नाम चारुदत्त रखा गया। उम्र बढ़नेके साथ उसमें सद्गुण भी बढ़ते गये। पुण्यवानोंको अच्छी बात अपने आप प्राप्त होती है।

चारुदत्त बचपनसे ही मन लगाकर पढ़ता-लिखता था। पच्चीस वर्षकी उम्र तक किसी प्रकारकी विषय-वासना उसे छू तक न गई। वह दिन रात पुस्तकोंका अभ्यास, विचार, मनन, चिन्तनमें मग्न रहता, इससे बचपनसे ही उसमें विरक्ति-सी आने लगी थी। वह नहीं चाहता था कि विवाह कर संसारके माया-जालमें फंसे। पर माता-पिताके बहुत आग्रह करनेपर उसे अपने मामाकी गुणवती पुत्री मित्रवतीके साथ विवाह करना पड़ा।

विवाह तो हो गया, पर तब भी चारुदत्त उसका रहस्य नहीं समझ पाया। उसने कभी अपनी स्त्रीका मुंह तक नहीं देखा। पुत्रकी यह दशा देख उसकी मांको बड़ी चिन्ता हुई। चारुदत्तको विषयोंकी ओर प्रवृत्ति हो इसके लिए उसे व्यभिचारी लोगोंकी संगतिमें डाल दिया। इसमें उन्हें सफलता भी मिली। अब चारुदत्त विषयोंमें इतना फंस गया कि वह वेश्या-प्रेमी बन गया। उसे लगभग बारह वर्ष वेश्याके यहाँ रहते बीत गये। इस अरसेमें उसने अपने पासका सब धन खो दिया। चम्पापुरमें चारुदत्त अच्छे धनिकोंकी गिनतीमें था, पर अब वह एक साधारण स्थितिका आदमी रह गया। रुपयेकी कमी हो जानेसे उनकी स्त्रीका गहना भी अब उसके खर्चके काममें आने लगा। वेश्याकी कुटनी मांने जब देखा कि चारुदत्त दरिद्र हो गया है, तो अपनी लड़कीसे कहा कि बेटी! अब तुम्हें इसका साथ जल्द छोड़ देना चाहिये, क्योंकि दरिद्र मनुष्य अपने किसी कामका

नहीं। वसन्तसेनाकी मांने युक्तिसे चारुदत्तको घरसे निकाल बाहर किया। वेश्याओंका प्रेम धनके साथ रहता है, मनुष्यके साथ नहीं। अतएव जहां धन नहीं, वहां वेश्याका प्रेम नहीं। अब चारुदत्तको जान पड़ा कि इस प्रकार विषयभोगमें आसक्त रहनेका कैसा भयङ्कर दुष्परिणाम होता है। वह अब वहां एक पलके लिये भी न ठहरा और अपनी स्त्रीके बचे आभूषण साथ ले पुरुषार्थके लिये विदेश निकल पड़ा। उस अवस्थामें अपना काला मुंह वह अपनी मांको दिखला ही कैसे सकता था ?

वहांसे चलकर चारुदत्त उलूख देशके उशिरावर्त शहरमें पहुंचा। चम्पापुरसे चलते समय उसका मामा भी साथ हो गया था। उशिरावर्तमें कपास खरीद कर ये ताम्रलिप्तापुरीकी ओर रवाना हुये। रास्तेमें इन्होंने विश्रामके लिये एक वनमें डेरा डाल दिया। इतनेमें जोरसे आंधी आयी, और परस्परकी रगड़से बांसोंके वनमें आग लग गयी। आगकी चिनगारियां उड़कर कपासपर जा पड़ीं। देखते-देखते सब कपास भस्मीभूत हो गया। इस हानिसे चारुदत्त बहुत दुःखी हुआ। वहांसे अपने मामासे सलाह कर वह समुद्रदत्त सेठके जहाज द्वारा पवन द्वीपमें पहुँचा, यहां उसके भाग्यका सितारा चमका और उसने खूब धन कमाया। अब उसे जननीके दर्शनके लिये स्वदेश लौट जानेकी इच्छा हुई। उसने चलनेकी तैयारी कर जहाजमें अपना माल असबाब सब लाद दिया।

जहाज अनुकूल समय देखकर रवाना हुआ। जैसे-जैसे वह अपनी जन्मभूमिकी ओर बढ़ता जाता था, वैसे-वैसे उसको प्रसन्नता अधिक होती जाती थी। पर अपना चाहा तो कुछ होता नहीं है, जब तक कि दैवको वह मंजूर न हो। यही कारण था कि चारुदत्तकी इच्छा पूरी न हो पायी, क्योंकि

अचानक किसी अनिष्टकर जलमग्न शिलासे टकरा कर जहाज चूर-चूर हो गया। चारुदत्तका सब माल-असबाब समुद्रके विशाल उदरमें विलीन हो गया। वह फिर पहिले सरीखा दरिद्र हो गया, पर दुःख उठाते-उठाते उसकी सहन शक्ति अत्याधिक हो गयी थी। एकके बाद एक आनेवाले दुःखोंने उसे निराशाके गहरे गढ़ेसे निकाल कर पूर्ण आशावादी और कर्तव्यशील बना दिया था। इसलिए इस बार भी उसे अपनी हानिका दुःख विशेष नहीं हुआ, वह फिर धन कमानेके लिये विदेश चल पडा। इस बार फिर उसने बहुत धन कमाया। घर लौटते समय फिर उसकी पहिले जैसी दशा हुई। इतनेमें ही उसके बुरे कर्मोंका अन्त न हुआ ऐसी भयङ्कर घटनाओंका उसे सात बार सामना करना पडा। कष्टपर कष्ट आनेपर भी वह अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं हुआ। आखिरी बार जहाजके फट जानेसे वह स्वयं भी समुद्रमें जा गिरा. पर भाग्यसे एक तख्तेके सहारे वह किनारे लग गया। यहांसे चलकर वह राजगृह पहुँचा, जहां विष्णुमित्र नामक सन्यासीसे उसकी भेंट हुई। सन्यासीने उससे अपना काम निकलता देख, पहले बडी सज्जनताका बर्ताव किया। चारुदत्तने भी उसे भला आदमी समझ अपनी हालत कह सुनाई। विष्णुमित्र भी हांमें हां मिलाते हुए बोला—"अच्छा हुआ जो तुमने अपना सब हाल कह सुनाया। धनके लिए अब तुम्हें इतना कष्ट न उठाना पडेगा। आओ, मेरे साथ चलो। यहांसे कुछ दूर आगे एक जंगल हैं वहां पर्वतकी तलहटीमें रसायनसे भरा एक कुँआ है। उस रसायनसे सोना बनाया जाता हैं। उससे थोड़ासा रस निकाल कर तुम ले आओ, तो तुम्हारी सारी दरिद्रता दूर हो जायगी।" चारुदत्त सन्यासीके पीछे-पीछे चला। दुर्जनों द्वारा धनके लोभी इसी प्रकार ठगे जाते है।

सन्यासीके साथ चारुदत्त एक पर्वतके पास पहुंचा। रस लानेकी सब बातें समझाकर सन्यासीने चारुदत्तके हाथमें एक तूम्बी दी। सींके पर बैठा कर उसे कुएंमें उतार दिया। चारुदत्त तूम्बीमें रस भर रहा था कि इतनेमें एक मनुष्यने उसे ऐसा करनेसे रोका। चारुदत्त पहले तो डरा, पर जब उस मनुष्यने कहा कि डरो मत; तब वह कुछ निर्भय होकर बोला—"तुम कौन हो और इस कुंएमें कैसे आये?" कुंएमें बैठा हुआ मनुष्य बोला—"मैं उज्जैयिनीका रहनेवाला हूं और मेरा नाम धनदत्त है। सिंहलद्वीपसे लौटते समय तूफानमें पड़कर मेरा जहाज फट गया, जिससे बहुत धन-जनकी हानि हुई! शुभ कर्मसे एक पटिया मेरे हाथ लग गया, जिसके सहारे मैं बच गया। समुद्रसे निकल कर मैं अपने शहरकी ओर जा रहा था कि रास्तेमें मुझे यही सन्यासी मिला। यह दुष्ट मुझे धोखा देकर यहां लाया। कुंएमेंसे रस भर कर देने पर भी इस पापीने पहले मेरे हाथसे तूम्बी ले ली और फीर रसी काट कर भाग गया। मैं आ कर कुंएमें गिरा। भाग्यसे चोट तो अधिक न लगी, पर दो-तीन दिन इसमें पडे रहनेसे अब मेरे प्राण घुट रहें है।" उसकी हालत सुनकर चारुदत्ताको बड़ी दया आई, पर वह स्वयं भी उसी परिस्थितिमें आ फंसा था, इसलिए उसकी कुछ सहायता न कर सका। चारुदत्तने उससे पूछा—"तो मैं इसे रस भर कर न दूं?" धनदत्तने कहा—"ऐसा मत कहो, रस भरकर दे ही दो, अन्यथा यह ऊपरसे पत्थर वगैरेह मार कर बड़ा कष्ट पहुंचावेगा।" तब चारुदत्तने एक बार तूम्बी रससे भरकर सींकेमें रख दी। सन्यासीने उसे निकाल लिया। चारुदत्तको निकालनेके लिये उसने फिर सींका नीचे डाला। अब की बार स्वयं सींके पर न बैठकर चारुदत्तने कुछ

वजनदार पत्थरोंको उसमें रख दिया। जब सींका आधी दूर आया, तब सन्यासी उसे काटकर चलता बना। चारुदत्तकी जान बच गयी। उसने धनदत्तका बड़ा उपकार माना और कहा—"मित्र! आज तुमने मुझे जीवनदान दिया है, जिसके लिये मैं जन्म-जन्मांतर तक तुम्हारा ऋणी रहूँगा।" उस कुंएसे निकलनेका उपाय पूछनेपर धनदत्त बोला—"यहां रस पीने प्रतिदिन एक गोह आया करती है, जो आज चली गई, कल फिर आवेगी, सो तुम पूंछ पकड़कर निकल जाना।" इतना कहते कहते उसका गला रुक गया और प्राण संकटमें पड़ गये। अपने उपकारीको कुछ भी सेवा करनेमें स्वयंको असमर्थ पा उसने धनदत्तको उत्तम गतिमें जानेके लिये पवित्र जिनधर्मका उपदेश देकर पंचनमस्कार मंत्र सुनाया और साथ ही सन्यास भी लिवा दिया।

सवेरा होते ही सदाकी तरह उस दिन भी गोह रस पीने आयी। रस पीकर जाते समय चारुदत्तने उसकी पूंछ पकड ली और उसके सहारे बहार निकल आया। तमाम जंगल पार करनेपर रास्तेमें उसकी रुद्रदत्तसे भेंट हो गई। वहांसे वे दोनों अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये रत्नद्वीप गये। रत्नद्वीप जानेके लिये पहले एक पर्वतपर जाना पडता था। पर्वतपर जानेका रास्ता बहुत संकीर्ण था। इसलिये वहां जानेके लिये इन्होंने दो बकरे खरीदे और उनपर सवार होकर सकुशल पर्वतपर पहुँच गये। वहां जाकर चारुदत्तके साथीने सोचा कि इन दोनों बकरोंको मारकर दो चमड़ेकी थैलियां बनानी चाहिये और उलट कर उनके भीतर घुस दोनोंका मुंह-सी देना चाहिये। मांसके लोभसे यहां सदा भैरुण्ड पक्षी आया करते हैं। वे अपनेको उठाकर उसपार रत्नद्वीप ले जायेंगे। वहां थैलियोंको फाड़कर हम बाहर हो जायेंगे।

मनुष्यको देखकर पक्षी डरकर उड़ जायेंगे और बड़ी सरलतासे उद्देश्य सिद्ध हो जायगा।

चारुदत्तने रुद्रदत्तकी पापभरी बातें सुनकर उसे बहुत फटकारा और कहा कि ऐसे पाप द्वारा प्राप्त किये धनकी मुझे कोई जरूरत नहीं। रातको ये दोनों सो गये। चारुदत्तको गाढ़ी नींदमें सोया देख पापी रुद्रदत्त चुपकेसे उठा और जहां बकरे बन्धे थे वहां गया। उसने पहले अपने बकरेको मारा और फिर चारुदत्तके बकरेपर हाथ बढ़ाया। इतनेमें अचानक चारुदत्तकी नींद खुल गई। रुद्रदत्तको अपने पास सोया न पाकर उसका माथा ठनका। जाकर देखा कि पापी रुद्रदत्त बकरेका गला काट रहा है। मारे क्रोधके चारुदत्त लाल-पीला हो गया। उसने रुद्रदत्तके हाथसे छुरा छीनकर उसे खूब खरी-खोटी सुनाई। सच है, निर्दयी पुरुष कौन-सा पाप नहीं करते ?

उस अधमरे बकरेको टुकर-टुकर देखते पाकर चारुदत्तका हृदय दयासे भर आया। उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धार बह निकली। बकरा प्रायः काटा जा चुका था। इसलिये उसको बचानेका प्रयत्न करनेसे वह लाचार था। उसकी शांतिके साथ मृत्यु और सुगतिके लिये चारुदत्तने उसे 'पंच-नमस्कार मंत्र' सुनाकर सन्यास दे दिया। जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवानके उपदेशका रहस्य समझते हैं उनका जीवन परोपकारके लिये ही होता है।

चारुदत्तकी इच्छा थी कि वह पीछे लौट जाय पर इसके लिये उसके पास कोई साधन न था। इसलिये लाचार हो उसे भी रुद्रदत्तकी तरह उस पैलीकी शरण लेनी पड़ी। उड़ते हुए भेरुण्ड पक्षी दो मांस-पिण्ड देख वहां आये और उन दोनोंको चोंचोंसे उठा चलते बने। रास्तेमें उनमें परस्पर

लड़ाई होने लगी, जिसके फलस्वरूप रुद्रदत्त जिस थैलीमें था, वह चोंचसे छूट पड़ी। रुद्रदत्त समुद्रमें गिरकर मर गया। मरकर भी अपने पापके फलसे भोगनेके लिये उसे नरकगामी होना पड़ा। चारुदत्तकी थैलीको जो पक्षी लिये था, उसने उसे रत्नद्वीपके एक सुन्दर पर्वतपर ले जाकर रख दिया। चोंच मारते ही चारुदत्त दीख पड़ा और पक्षी डर कर भाग गया। जैसे ही चारुदत्त थैलीके बाहर निकला कि धूपमें ध्यान लगाये एक महात्मा दीख पड़े। उन्हें कड़ी धूपमें मेरुकी तरह निश्चल देख कर चारुदत्तकी उस पर बहुत श्रद्धा हुई। मुनिराजका ध्यान पूरा होते ही उन्होंने चारुदत्तसे कहा—"सखे चारुदत्त, अच्छी तरह तो, हो न?" मुनिके मुखसे अपना नाम सुन कर चारुदत्तको बड़ी खुशी हुई कि इस अपरिचित देशमें भी उसे कोई पहचानता है, साथ ही उसे इस बात पर आश्चर्य भी हुआ। वह मुनिराजसे बोला—"प्रभो। मालूम होता है कि आपने कहीं मुझे देखा हैं, बतलाइये तो भला मैं आपको कहां मिला था?" मुनि बोले—"सुनो, मैं अमितगति विद्याधर हूं। एक दिन मैं चंपापुरीके बगीचेमें अपनी प्रियाके साथ सैर करने गया था। उसी समय धूमसिंह नामक विद्याधर वहां आया और मेरी स्त्रीको देखकर उसकी नीयत खराब हो गयी। अपनी विद्याके बलसे उस कामान्ध पापीने मुझे एक वृक्षमें कील दिया और मेरी पत्नीको विमान पर बैठा कर आकाश-मार्गसे चल दिया। भाग्यवश उस समय तुम वहां आ गये। तुम्हें दयावान समझ मैंने वहीं रखी एक औषधिको पीस कर मेरे शरीर पर लेप करनेको कहा। तुमने वैसा ही किया, जिससे दुष्ट विद्याओंका प्रभाव नष्ट हुआ और वैसे ही छुट गया जिस प्रकार गुरु-उपदेशसे जीव माया-मिथ्याकी कीलसे छुट जाता है। मैं उसी समय कैलाश पर्वतपर

गया और धूमसिंहको उचित दण्ड दे अपनी स्त्रीको छुड़ा लाया। उस समय तुमको मैंने मनमानी वस्तु मांगनेको कहा था, पर तुमने कुछ भी लेनेसे इन्कार किया। वह भी ठीक ही था, क्योंकि सज्जन पुरुष दूसरोंकी भलाई किसी प्रकारकी आशासे नहीं करते हैं। इसके बाद मैं अपने नगरको गया और कुछ वर्षों तक राज्यश्रीका खूब आनंद लूटा। बादको आत्म-कल्याणकी इच्छासे पुत्रोंको राज्य सौंप मैंने दीक्षा ले ली, जो मोक्षको देनेवाली है। चारण ऋद्धिके प्रभावसे मैं यहां आकर तपस्या कर रहा हूं। यही कारण है कि मैं तुम्हें पहचानता हूँ।" चारुदत्त इन बातोंको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह यहां बैठा ही था कि मुनिराजके दो पुत्र उनकी पूजा करने वहां आये। मुनिराजने चारुदत्तसे भी उनका परिचय कराया। परस्पर मिलकर इन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसी समय एक खूबसूरत युवक वहां आया। युवकने आते ही चारुदत्तको प्रणाम किया। चारुदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोकते हुए कहा कि पहले तुम्हें गुरुदेवको नमस्कार करना उचित था। आगत युवकने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं पहिले बकरा था। पापी रुद्रदत्त जब मेरा गला आधा काट चुका था, उस समय भाग्यसे आकर आपने मुझे नमस्कार-मन्त्र सुनाया और साथ ही सन्यास दे दिया मैं शांतिसे मर कर मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। इसलिये मेरे गुरु तो आप ही हैं—आपने ही मुझे सन्मार्ग बतलाया है। वह सौधर्म-देव धर्म-प्रेमसे प्रेरित हो दिव्य वस्त्राभरण चारुदत्तको भेंट कर और उसे नमस्कार कर स्वर्ग चला गया। परोपकारियोंका इस प्रकार सम्मान होना ही चाहिये।

इधर विद्याधर सिंहरथ और वराङ्गग्रीव मुनिराजको नमस्कार कर चारुदत्तसे बोले--"चलिये, हम आपको आपकी जन्मभूमि चम्पापुरमें पहुँचा आवें।" चारुदत्त कृतज्ञता व्यक्त करते हुए जानेको सहमत हो गया। उन्होंने चारुदत्तको माल-असबाब सहित बहुत जल्द विमान द्वारा चम्पापुरी पहुँचा दिया इसके बाद वे उसे नमस्कार कर अपने स्थानको लौट गये। पुण्यबलसे संसारमें सब कुछ हो सकता है, अतएव पुण्य प्राप्तिके लिये जिन भगवानके आदेशानुसार दान-पूजा-पूजा शीलरूप चार पवित्र धर्माचरणोंका सदा पालन करते रहना चाहिये।

अचानक अपने प्रिय पुत्रके आ जानेसे चारुदत्तकी माताको बड़ी खुशी हुई। उन्होंने बार-बार उसे छातीसे लगाकर अपने हृदयको ठण्डा किया। मित्रवतीके भी आनंदका ठिकाना न रहा वह आज अपने प्रितमसे मिलकर जिस सुखका अनुभव कर रही थी, उसकी समानतामें स्वर्गका दिव्य सुख भी तुच्छ है। बातही बातमें चारुदत्तके आनेका समाचार सारे नगरमें फैल गया, जिससे सबको आनन्द हुआ।

चारुदत्त किसी समय बड़ा धनी था। अपने कुकर्मोंसे वह राहका भिखारी बन गया। जब उसे अपनी दशाका ज्ञान हुआ तो फिर पुरुषार्थी बनकर उसने कठिनाइयोंका सामना किया। कई बार असफल होनेपर भी वह निराश नहीं हुआ। अपने उद्योगसे उसके भाग्यका सितारा फिर चमक उठा और पूर्ण तेज प्रकाश करने लगा। कई वर्षोंतक खूब सुख भोगकर अपनी जगह अपने 'सुन्दर' नामके पुत्रको नियुक्त कर वह उदासीन हो गया। दीक्षा ले उसने तप आरम्भ किया और अन्तमें सन्यास सहित मरकर स्वर्ग लाभ किया। स्वर्गमें वह नाना प्रकारके भोगोंको भोगता

हुआ सुखसे रहता है। सुमेरु और कैलाश पर्वत आदि स्थानोंके जिन मन्दिरोंमें जाना, विदेह क्षेत्र जाकर साक्षात् तीर्थङ्कर केवली भगवानकी स्तुति करना तथा उनका धर्मोपदेश सुनना आदि धर्म साधनमें ही वहां अधिक समय लगता है। जिन भगवानके प्रचारित धर्मकी, इन्द्र, नागेन्द्र विद्याधर आदि भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं, तुम भी इसी धर्मका आश्रय लो, जिससे परम पदको प्राप्त कर सको।

—: * :—

पराशर मुनिकी कथा

जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर अन्य मतोंकी असत्कल्पनाओंका सत्पुरुषोंको ज्ञान हो, इसलिये उन्हींके शास्त्रोंमें लिखी हुई पराशर नामक तपस्वीकी कथा लिखी जाती है।

हस्तिनापुरमें गङ्गभट नामक एक धीवर रहता था। एक दिन नदीमें उसे एक बड़ी मछली मिली, जिसके चीरने पर उसमेंसे एक सुन्दर कन्या निकली। उसके शरीरसे बड़ी दुर्गन्ध निकल रही थी। धीवरने उसका नाम सत्यवती रखा, यत्नसे उसका पालन-पोषण करने लगा। मछलीसे कन्या पैदा हो, यह बात सर्वथा असम्भव होने पर भी, लोग आंख बन्द कर ऐसी बातों पर विश्वास किये चले जाते हैं।

सत्यवती जब बड़ी हुई, तब एक दिन गङ्गभट उसे नदी किनारे नावपर बैठाकर आप किसी कामसे घरपर आ गया। इतनेमें पराशर मुनि वहां आ पहुँचे और सत्यवतीसे बोले—"लड़की मुझे नदी पार जाना है, तू नावपर बैठाकर मुझे पार कर दे।" भोली सत्यवती उनकी बात मान उन्हें नावपर बैठाकर नाव खेने लगी। सत्यवती सुन्दर तो थी

ही, उसकी खिलती हुई जवानीने तपस्वीके तपको डगमगा दिया। कामके वश हो उन्होंने अपनी पापमयी मनोवृत्ति सत्यवती पर प्रकट की। सत्यवती सुनकर लज्जित हुई और डरती हुई बोली—"महाराज! आप जैसे सर्व समर्थ धर्मात्माके लिये मैं दुर्गन्धमय नीच जातिकी लड़की कैसे योग्य हो सकती हूँ?" पराशरको इस भोली लड़कीके निष्कपट विचार पर भी शर्म न आई, कामियोंको शर्म कहां? उन्होंने सत्यवतीसे कहा—"मैं अभी तेरा शरीर सुगन्धमय बना देता हूँ और अपने तपोबलसे तत्काल वैसा कर भी दिखाया।" उनके प्रभावको देख सत्यवती राजी हो गई और बोली—"महाराज! किनारेके लोग यह देखकर क्या कहेंगे?" तब पराशरने आकाशको धुंधलाकर (जिससे कोई देख न सके) अपनी काम-वासना पूरी की। इसके बाद उन्होंने नदीमें बीचमें ही एक छोटा-सा गांव बसाया और सत्यवतीसे विवाह कर वहां रहने लगे।

कुछ दिन बाद सत्यवतीके व्यास नामक पुत्र हुआ। जन्म-कालसे ही उसके सिर पर जटाएँ थीं और वह यज्ञोपवीत पहिने था। जन्मते ही वह पिताको प्रणाम कर तपस्या करने चला गया। ये बातें पागलके प्रलाप छोड़ और क्या हो सकती हैं और विवेक बुद्धिवाले इनपर विश्वास भी कैसे कर सकते हैं? भक्तिके आवेशमें आ कर असत्य पर विश्वास करने-वालोंने ऐसा लिख मारा है। अतएव बुद्धिमानोंको उचित है कि वे उन विद्वानोंकी संगति करें, जो जैनधर्मके रहस्यको समझते हैं तथा जैन शास्त्रोंका श्रद्धाके साथ अध्ययन करें और उनमें अपनी पवित्र बुद्धिको लगावें। इसीसे उन्हें सच्चा सुख प्राप्त होगा।

—*—

सात्यकि और रुद्रकी कथा

केवल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, ऐसे जिन भगवानको नमस्कार कर शास्त्रानुसार सात्यकि और रुद्रकी कथा लिखी जाती है।

गन्धार देशके महेश्वरपुर नामक सुन्दर शहरमें सत्यन्धर नामके राजा अपनी स्त्री सत्यवतीके साथ रहते थे। इनके सात्यकि नामका एक पुत्र हुआ, जिसने राजविद्यामें बड़ी कुशलता प्राप्त की।

उस समय सिंधु देशका विशालानगरीका राजा चहेक जैनधर्मका पालक और जिनेन्द्र भगवानका सच्चा भक्त था। उसकी रानी सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और धर्मात्मा थी। उसको सात कन्यायें थीं, जिनका नाम पवित्रा, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलनी, ज्येष्ठा और चन्दना था।

सम्राट् श्रेणिकने चहेकसे चेलिनीको मांगा, पर चहेकने उनका आयु अधिक देख, लड़की देनेसे इनकार कर दिया। श्रेणिकको यह बहुत बुरा लगा। अपने पिताका दुःखका कारण जानकर अभयकुमारने उनका एक सुन्दर चित्र बनवाया और उसे ले विशाला पहुँचा। वह चित्र चेलिनीको दिखलाकर उसने उसे श्रेणिकपर मुग्ध कर लिया। चहेककी सम्मति अनुकूल न देख अभयकुमारने चेलिनीको गुप्त मार्गसे ले जानेका विचार किया। जब चेलिनी उसके साथ जानेको तैयार हुई, तब ज्येष्ठाने भी साथ चलनेका कहा। चेलिनी राजी तो हो गई, पर बादमें उसे ले जाना ठीक नहीं समझ थोड़ा दूर जानेपर ज्येष्ठासे कहा—"बहन! मैं अपने आभूषण तो महलमें ही भूल आयी हूँ, तू जाकर उन्हें ले आ? मैं तबतक यहीं खड़ी हूँ।" बेचारी ज्येष्ठा उसके फांसेमें आ गई

और आभूषण लाने चली गई। लौटनेपर उसने देखा कि वहां कोई नहीं है। अपनी बहनकी कुटिलतासे ज्येष्ठाको बहुत दुःख हुआ। इस दुःखके मारे यशस्वती आर्यिकाके पास गई और वह दीक्षित हो गई। ज्येष्ठाकी सगाई सत्यन्धरके पुत्र सात्यकिसे हो चुकी थी। जब सात्यकिने उसके दीक्षा लेनेकी बात सुनी, तो वह भी विरक्त होकर समाधिगुप्त मुनिसे दीक्षा लेकर मुनि हो गया।

एक दिन यशस्वती, ज्येष्ठा आदि आर्यिकाएँ श्री वर्द्धमान भगवानकी वन्दना करने चलीं। बनमें पहुँचते ही खूब जोरसे पानी बरसने लगा, जिससे आर्यिका संघको बड़ा कष्ट हुआ, उनका संघ तितर-बितर हो गया। ज्येष्ठा कालगुहा नामकी गुफामें पहुंची और उसे एकांत समझ शरीरके भीगे वस्त्रोंको उतार उन्हें निचोड़ने लगी। सात्यकि मुनि भी इसी गुफामें ध्यान कर रहे थे। उन्होंने ज्येष्ठा आर्यिकाका खुला शरीर देख लिया। देखते ही कामवश हो, उन्होंने अपने शीलरूपी मौलिक रत्नको आर्यिकाके शरीररूपी अग्निमें झोंक दिया। कामसे अन्धा बना हुआ मनुष्य क्या नहीं कर सकता ?

आर्यिका यशस्वती ज्येष्ठाकी चेष्टा आदिसे उसकी दशा जान गई। धर्म अपवादके भयसे वह ज्येष्ठाको चेलिनीके पास रख आई, चेलिनीसे उसे गुप्त रीतिसे अपने यहां रख लिया। नौ महीने बाद ज्येष्ठाको पुत्र हुआ, जिसे श्रेणिकने 'चेलिनीको पुत्र हुआ है', इस रूपमें प्रगट किया। ज्येष्ठा उसे वहीं छोड़, स्वयं आर्यिका संघमें चली आई और प्रायश्चित लेकर तपस्विनी हो गयी। उसका लड़का श्रेणिकके घर पलने लगा। बचपनसे संगति अच्छी न रहनेके कारण उसके स्वभावमें कठोरता आ गई। वह अपने साथ खेलनेवाले लड़कोंको क्रूरताके साथ मारने-पीटने लगा, जिसकी शिकायत

महारानी तक पहुँच गयी। उन्होंने उसका रौद्र स्वभाव देखकर नाम भी रुद्र रख दिया। जो वृक्ष जड़से खराब होता है उनके फलोंमें मिठापन कहांसे आ सकता है? एक दिन रुद्रसे और कोई अपराध बन पड़ा, जिसे सुन चेलिनीने क्रोधके आवेशमें यहां तक कह डाला कि किसने इस दुष्टको जना और किसे यह कष्ट देता है। जिसे यह अपनी माता समझता था, उसके मुखसे ऐसी बात सुन रुद्र गहरे विचारमें पड गया। उसने सोचा कि इसमें कोई कारण अवश्य है। श्रेणिकके पास जाकर उसने पूछा—"पिताजी! सच बताईये कि मेरे पिता कौन हैं और कहां है? पहले तो श्रेणिकने आनाकानी की, पर जबरुद्र बहुत पीछे पडा, तो लाचार हो उन्हें सब बातें सच्ची बता देनी पड़ी। रुद्रको इससे बडा वैराग्य हुआ और वह तभी अपने पिताके पास जा कर मुनि हो गया।

एक दिन रुद्र ग्यारह अंग और दश पूर्वका ऊँचे स्वरसे पाठ कर रहा था। उस समय श्रुतज्ञानके माहात्म्यसे पांच सौ बड़ी विद्याएँ और सात सो छोटी विद्याएँ सिद्ध होकर आई। उन्होंने रुद्रसे अपनेको स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। रुद्रने लालचवश उन्हें स्वीकार तो कर लिया, पर लोग आगे होनेवाले सुख और कल्याणके नाशका कारण होता है, इसका उसने विचार न किया।

उस समय सात्यकि मुनि गोकर्ण पर्वतकी ऊँची चोटीपर ध्यान किया करते थे। उनकी वन्दनाको अनेक धर्मात्मा पुरुष आया करते थे। जबसे रुद्रको विद्याएँ सिद्ध हुई, तबसे वह मुनि वन्दनाके लिये आनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंको अपनी विद्या-बलसे सिंह, व्याघ्र, गेंडा, चीता आदि हिंसक और भयङ्कर पशुओं द्वारा डराकर पर्वत पर जाने न देता

था। सात्यकि मुनिको मालूम होने पर उन्होंने उसे समझाया और ऐसा करनेसे रोका। रुद्रने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और लोगोंको अनेक कष्ट देने लगा। तब सात्यकिने कहा—"तेरे इस पापका फल बुरा होगा और तू स्त्रियों द्वारा तप-भ्रष्ट होकर मृत्युका ग्रास बनेगा। अतएव अभीसे सम्हल जा, जिससे कुगतियोंका दुःख न भोगना पड़े।" रुद्र पर इस धमकीका भी कोई असर न हुआ और उसने अपनी दुष्टता जारी रखी क्योंकि पापियोंके हृदयमें सदुपदेश नहीं ठहरता।

एक दिन रुद्र मुनि कैलाश पर्वत पर गया और वहां आतापन योग द्वारा तप करने लगा। इसके बीच एक और कथा है, जिसका इसीसे सम्बन्ध है। विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मेघनिबद्ध, मेघनिचय और मेघनिनाद नामक तीन सुन्दर शहर थे। वहांके राजा कनकरथके उनकी रानी मनोहरसे देवदारु और विद्युज्जिह्व नामक दो पुत्र हुए। ये दोनों सच्चरित्र और विद्वान थे। योग्य समझ कनकरथ अपने बड़े पुत्र देवदारुको राज्य भार सौंप आप गणधर मुनिराजके पास दीक्षा लेकर योगी बन गये और सबको कल्याण मार्ग बतलाना ही अब उनका लक्ष्य हो गया।

दोनों भाइयोंमें बहुत दिनों तक तो पटी। पर बादमें किसी कारणसे फूट हो गयी। फलस्वरूप छोटे भाईने राज्यके लोभमें पड़कर बड़ेके विरुद्ध षड्यन्त्र रच उसे राज्यसे निकाल दिया। देवदारुको अपने मानभङ्गका बड़ा दुःख हुआ। वहांसे आकर वह कैलाश पर्वत पर रहने लगा। देवदारुके आठ सुन्दर कन्याएँ थीं। एक दिन सब बहनें तालाबमें स्नान करनेको आईं। अपने-अपने कपड़े उतार वे नहानेको जलमें

घुसीं, उसी समय रुद्र मुनिने इन्हें खुले शरीर देखा। देखते ही कामसे पीड़ित हो वे इन पर मोहित हो गये और अपनी विद्या द्वारा उनके कपड़े धुरा मंगवाये। कन्याएँ जब स्नान कर बाहर निकलीं, तो कपड़े न देख उन्हें आश्चर्य हुआ। वे लज्जाके मारे व्याकुल होने लगीं। इतनेमें उनकी नजर रुद्र मुनि पर पड़ी और पास जा कर संकोचसे पूछा—"प्रभो! कृपा कर हमें बताइये कि हमारे कपड़े क्या हो गये?" आपत्तिके समय लज्जा संकोच सब जाता रहता है। रुद्रने निर्लज्जकी तरह उनसे कहा—"हां, मैं तुम्हारे वस्त्रका पता बता सकता हूँ, यदि तुम सब मुझे चाहने लगो।" कन्याओंने कहा—"हम अबोध हैं, यदि पिताजी इस बातको स्वीकार कर लें, तो फिर हमें कोई आपत्ति न रहेगी। इसपर मुनिने उनके वस्त्र लौटा दिये। बालिकाओंने घर जा कर सब बातें अपने पिताजीसे कहीं। देवदारुने एक विश्वस्त कर्मचारी द्वारा मुनिको कहला भेजा कि वे अपनी लड़कियोंको उन्हें अर्पण कर सकते हैं, यदि मुनिराज विद्युजिह्वको मार कर उनका राज्य उन्हें वापस दिलवा सकें। रुद्रने स्वीकार कर लिया, रुद्रको अपने अनुकूल देख देवदारु उसे घर पर ले आया। राज्य-भ्रष्ट राजा पुनः राज्य प्राप्तिके लिये क्या नहीं कर सकता है?

रुद्र विजयार्द्ध पर्वत पर गया और विद्याओंकी सहायतासे विद्युजिह्वको मारकर उसी समय देवदारुको सिंहासनपर बैठा दिया। राज्य प्राप्तिके बाद देवदारुने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अपनी सभी लड़कियोंका विवाह आनन्द-उत्सवके साथ रुद्रसे कर दिया। इसके सिवाय और भी बहुत-सी कन्याओंसे उसने विवाह किया। दिवा-रात्रि उसके काम सेवनके फल-स्वरूप सैकड़ों राज-कन्याएँ अकालमें ही काल

लगा लिया । परस्पर कुशल पूछनेके बाद राजा पहुपालने अपने अविचारितरम्य कृत्यकी निंदा की और पश्चात्ताप करने लगा। तब उस दम्पतिने राजाको विनयपूर्वक समझाकर धैर्य बन्धाया ।

राजाने पुत्रीसे उसकी पूर्व व्यथा और उसके दूर होनेका वृत्तांत पूछा । तब पुत्रीने आद्योपांत कह सुनाया । यद्यपि इससे राजाको बहुत कुछ शांति मिली, परन्तु मनकी शल्य निःशेष न हुई । ठीक है—कष्टसाध्य वस्तुके सहज सिद्ध हो जानेसे एकदम शंकाका परिहार नहीं हो जाता, जबतक कि ठीकर साक्षी न मिले । इसलिये राजा अपनी शंका निर्मूल करनेके हेतु श्रीगुरुके पास गये, और विनय सहित नमस्कार कर पूछने लगे—

हे धर्मावतार दयालु प्रभु ! श्रीपालके कोढ़ हो जानेका वृत्तांत कृपाकर कहो । तब श्रीगुरुने सब वृत्तांत आद्योपांत अवधिज्ञानके बलसे सुना दिया । सुनते ही राजाको शल्य निःशेष हो गई । इस प्रकार राजा पहुपाल अपनी पुत्री और जंवाई सहित गुरुको नमस्कार कर निज स्थानको गया, और दोनोंको स्नान कराकर अमूल्य वस्त्राभूषण पहिराये, तथा अनेक प्रकारसे पुत्री और जंवाईकी प्रशंसा व सुश्रूषा की । इस तरह वे परस्पर प्रेमपूर्वक अपना२ समय आनंदसे बिताने लगे । हे सर्वज्ञ वीतराग दयालु प्रभु ! जैसे दिन श्रीपाल व मैनासुन्दरीके फिर ऐसे ही सबके फिरें ।

उज्जैनीसे श्रीपालका गमन

श्रीपालको प्रिया सहित उज्जैनीमें रहते हुए बहुत दिन हो गये। क्योंकि आनन्दमें समय जाते मालूम नहीं होता था। एक दिन दोनों रात्रिको सुखनींद ले रहे थे कि श्रीपालकी नींद अचानक खुल गई, और उनको एक बड़ी भारी चिंताने घेर लिया। वे पडे२ करवटें बदलने लगे और दीर्घ उस्वास लेने लगे। भला, ऐसी अवस्था अब पतिकी हो गई, तब क्या स्त्रीको निद्रा आ सकती थी? नहीं कदापि नहीं। एक अंगकी पीडा दूसरे अंगको अवश्य ही होती है।

वह पतिपरायणा सती तुरन्त ही जागी और पतिके पैर पकड़कर मसलने तथा पूछने लगी—हे नाथ! चिंताका कारण क्या है, सो कृपाकर कहो। क्या राजाने कुछ कटुवचन कहा है? या स्वदेशकी याद आ गई है? या किसीने आपके चित्तको चुरा लिया है? अथवा ऐसा ही कोई और कारण है? हे प्राणधार! आपको चिन्तित देख मुझे अत्यन्त चिन्ता हो रही है।

तब श्रीपालने बहुत संकोच करते हुए कहा—प्रिये! और तो कोई चिंता नहीं है, केवल यही चिंता है कि यहां रहनेसे सब लोग मुझे राज-जंवाई कहते है और मेरे पिताका नाम कोई भी नहीं लेता है। इसलिये वे पुत्र जिनसे पिताका कुल व नाम लोप हो जाय, यथार्थमें पुत्र कहलानेके योग्य नहीं है। इसी बातका दुःख मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ है। क्योंकि कहा है—

सुता और सूतके विषै, अन्तर इतना होय।
वह परवंश बढ़ावती, वह निज वंश हि सोय॥
जो सुत तज निज स्वजनपुर, रहे स्वसुर गृह जाय।
सो कुपूत जग जानिये, अति निर्लज्ज कहाय॥

इसलिये हे प्रिये ! अब मुझे यहां एक२ क्षण एक वर्ष बराबर बीत रहा है। बस, मुझे यही दुःख है । यह सुनकर मैनासुन्दरीने कहा—हे नाथ ! यह बिल्कुल सत्य है। क्योंकि कहा है—

भाई रहे बहिनके तीर, बिन आयुध रण चढ़े जो धीर ।
धन बिना दान देन जो कहे, अरु जो जाय सासरे रहे ॥
हंस बसे पोखरो जाय, केहरि बसे नगरमें आय ।
सती तने मन विकलप रहे, रणसे सुभट भागवे कहे ॥
बोले काग आमकी डाल, मान सरोवर बगुला चाल ।
कुञ्जर चढ़े सिंह वन मांहि, त्रियसों जो हंसी कराहि ॥
मूरख बांचे महापुराण, कुल भामिनि गह खोटी बान ।
इतने जन जग निन्दा लहे, ऐसे बड़े सयाने कहे ॥

इसलिये आपका विचार अति उत्तम है। प्रत्येक मनुष्यको अपने कुल, देश, जाति, धर्म व पितादि गुरुजनोंके पवित्र नामको सर्वोपरि प्रसिद्ध करना चाहिये, क्योंकि पुत्र ही कुलका दीपक कहा जाता है। जिन पुत्रोंने अपने जाति, कुल, धर्म, देश व पितादि गुरुजनोंके नामका लोप कर दिया यथार्थमें वे पुत्र उस कुलके कलंक हैं, इसलिये हे स्वामी ! यहांसे चतुरंग सैन्य साथ लेकर आप अपने देशको चलिये और चिता मेटकर सानन्द स्वराज्य भोगिये ।

अहा ! धन्य है मैनासुन्दरीको कि जिसने पतिके सद्विचारमें अपने विचार मिला दिए ! यथार्थमें वे ही स्त्रियां सराहनीय है जो पतिकी अनुगामिनी हों। अन्यथा जो स्त्रियां स्वामीकी आज्ञाके प्रतिकूल हैं वे केवल बेड़ीकी तरहसे दुःखरूप भयानक बन्धन हैं । कहा है—

पति आज्ञा अनुसार जो, चले धन्य वह नारि ।
अरु पति विमुखा जे त्रियां, जैसे तीक्ष्ण कुठारि ।।

अपनी प्रियाके ऐसे वचन सुनकर श्रीपाल बोले—चन्द्रवदने ! आपने कहा सो ठीक है, परन्तु क्षत्रि कभी किसीके सामने हाथ नीचा (मांगना) नहीं करते । क्योंकि कहा है—

करपर कर निशिदिन करें, करतल कर न करेय ।
जा दिन करतल कर करें, ता दिन मरण गिनेय ।।

इसलिए प्रथम तो मांगना ही बुरा है और कदाचित् यह भी कोई करे तो ऐसा कौन होगा जो अपने हाथमें आया हुआ राज्य दूसरोंको देकर आप स्वयं पराश्रित हो जीवन व्यतीत करेगा ? संसारमें कनक और कामनी कोई भी किसीको खुशीसे नहीं सौंप देता । और यदि ऐसा भी हो तो मेरा पराक्रम किस तरह प्रगट होगा ? यथार्थमें अपने बाहुबलिसे प्राप्त किया हुआ ही राज्य सुखदायक होता है । दूसरे—यहांतक अपनी शक्तिसे काम नहीं लिया अर्थात् अपने बलकी परीक्षा कर उसका निश्चय नहीं कर लिया यहांतक राज्य किस आधार पर चल सकता है ?

तीसरे शक्तिको काममें न लानेसे कायरता बढ़ जाती है । पान सड़े घोड़ा अड़े, विद्या बिसर जाय । बाटो जले अंगारपर किस कारण यह थाय ? उत्तर फेरा नहीं । तात्पर्य—विद्या अभ्यासकारिणी होती है । इसलिए पुरुषको सदैव सावधान हो रहना उचित है । घरमें आग लगनेपर कूवा खुदाना वृथा है । ऐसे ही शत्रुके आ जानेपर शक्तिको परीक्षा करना व्यर्थ है ।

इसलिए हे प्रियतमे ! मैं विदेशमें जाकर निज बाहुबलसे राज्यादि वैभव प्राप्त करूंगा । तुम आनन्दसे अपनी सासुकी सेवा मातावत् समान करना और नित्य प्रति श्री जिनदेवका

पूजन, वन्दन, स्तवन दानादि षट्कर्मोंमें सावधान रहना व पंचाणुव्रत मन, वचन, कायसे पालन करना और किसी प्रकारकी चिंता न करना ।

पतिके ये वचन उस सतीको यद्यपि दुःखदायक थे और वह स्वप्नमें भी पतिविरह सहन करनेके लिए अत्यन्त कायर थी, परन्तु जब उसको यह निश्चय हो गया कि अब ये नहीं मानेंगे, और अवश्य ही विदेश जावेंगे, तो फिर इस समय इनको छेड़नेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा, किन्तु यात्रामें विघ्न आवेगा, इसलिये छेड़छाड़ करना अनुचित है, ऐसा सोचकर उसने धीमे स्वरसे कहा—

"प्राणधार ! यद्यपि मैं आपका क्षणविरह करनेको भी असमर्थ हूँ तथापि आपकी आज्ञा मैं शिरोधार्य करती हूँ परन्तु यह बताइये कि इस अबलाको पुनः आपके दर्शन कबतक मिलेंगे ? जिसके सहारे व आशापर चित्तको धैर्य देकर सन्तोषित किया जाय । "

तब श्रीपालजीने कहा-"प्रिये ! तुम धैर्य रखो, मैं बारह वर्ष पूर्ण होते ही, पीछे आकर तुमसे मिलूंगा । इसमें किंचित् भी अन्तर न समझना" यह सुनकर मैनासुन्दरीने कहा-"हे नाथ ! यद्यपि मैंने अपशुकन व आपका चित्त खेदित होनेके भयसे बिना आनाकानी किये ही आपका जाना स्वीकार कर लिया है और स्त्रीका धर्म भी यही है कि पतिकी इच्छा प्रमाण प्रवर्ते, परन्तु संसारमें मोह महा प्रबल है, इसलिए मेरा चित्त बारम्बार अधीर हो जाता है । अर्थात् आपके चरणकमल छोडनेको जी नहीं चाहता ।

इसलिए यदि आप इस दासीको भी सेवाके लिए ले चलें, तो बड़ा उपकार हो । कारण, बारह वर्ष क्या, दासी बारह पल भी विरह सहनेको असमर्थ है । ऐसी नम्र प्रार्थना कर,

स्वामीकी ओर आशावती हो यह प्रतीक्षा करने लगी कि स्वामी या तो मुझे साथ ले चलेंगे, या अपने जानेका विचार बन्द कर देंगे परन्तु ऐसी आशा करना उसका निरर्थक था। क्योंकि बड़े पुरुष जो कुछ विचार करते हैं वह पक्का ही करते हैं, और उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। कहा भी है—

यदि महज्जन निजवचन, करें न जो निर्वाह ।
तो उनमें अरु लघुनमें, अन्तर सूझे नांह ।।

निज प्रियाको मोहातुर देख श्रीपाल बोले-प्रिये ! तुम अधीर मत होओ, मैं अवश्य ही अपने कहे हुए समय पर आ जाऊंगा। संसारमें जीवोंका परम शत्रु यह मोह ही है। जिसने इसको जीता है वे ही सच्चे सुखी हैं। और अधिक क्या कहा जाय ? निश्चयसे यदि देखो कि दुःख कोई वस्तु है, तो वह मोहके सिवाय और कुछ भी नहीं है। अर्थात् मोह ही दुःख है। यही दुष्टानिष्ट बुद्धि कराकर प्राणियोंको नाना प्रकारके नाच नचाता है। इसलिए इसका परिहार करना ही उत्तम पुरुषोंका काम है। सो चिन्ता न करो। मैं उद्यमके लिए जा रहा हूँ। उद्यम करना पुरुषका कर्तव्य है। उद्यम-हीन पुरुष संसारमें निंद्य और दुःखका पात्र होता है। उद्यमसे ही नर सुर और क्रमशः मोक्षका भी सुख प्राप्त होता है। जो उद्यम नहीं करते उनका जन्म संसारमें व्यर्थ है। कहा है—

धर्मार्थिकाममोक्षाणां, यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव, तस्य जन्म निरर्थकम् ।।

अर्थात्-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंमेंसे जिसने एक भी प्राप्त नहीं किया उसका जन्म बकरेके गलेमें लटकते हुए पयरहित स्तनके समान निरर्थक है। इसलिए मोह त्यागकर मुझे अनुमति दो।

तब वह सती कुछ धैर्य धारण करके बोली—स्वामिन् !

मुझे भी ले चलो। तब श्रीपाल बोले-" प्रिये। परदेशमें बिना सहाय व बिना ठिकाने एकाएक स्त्रीको ले जाना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रथम तो लोग अनेक प्रकारकी आशंकायें करने लगेंगे और जिन देशोंसे हम लोग सर्वथा अपरिचित्त हैं वहां पर हमारा सहायी कौन ? दूसरे जब कि मैं उद्यमके अर्थ ही विदेश जाता हूं तो वहां स्त्रीको संग रखकर उद्यम करना " गधेके सींगवत ' असम्भव है। हां, तीर्थयात्रा इत्यादिमें होता तो ठीक ही था।

पुरुषको चाहिए कि परदेशमें जबतक भली भांति परिचय न हो जाय और उद्यम आदि निश्चित व स्थिर न हो जाय तथा जहांपर स्वपक्ष न हो जाय वहांपर स्त्रियादिको कभी साथ न ले जाय। किन्तु उन्हें अपने माता पिता आदि बड़े जनोंकी रक्षामें छोड जाय, अथवा उसके माता पिताके घर (यदि अपने घरमें कोई न हो तो) भेज दे। और पश्चात् उक्त बातोंको निश्चय करके उसे बालबच्चो सहित ले जाय।

हां यह बात जरूरी है कि समयानुसार खबर देते लेते रहें। सो हे प्रिये ! मैं तो शीघ्र ही आनेवाला हूं। तू चिन्ता मत कर।

निदान मैनासुन्दरी उक्त सिखामन सुनकर बोली- स्वामीन् !! यदि आप जाते है और दासीकी विनती नहीं सुनते, तो जाइये, परंतु एक प्रार्थना है कि इस दासीसे दासत्व करानेका विचार और पंचपरमेष्ठीका ध्यान स्वप्नमें भी न भूलिये, क्योंकि वे ही पंचपरमेष्ठी लोकमें मंगलोत्तम और शरणधार है। तथा सिद्धचक्रका आराधन भी सदैव कीजियेगा। अपनी माता व मित्रोंको भी नहीं भुलाइयेगा। मिथ्या देव, गुरु और धर्मका विश्वास न कीजियेगा। ये ही जीवके प्रबल शत्रु हैं। जिनदेव,

निर्ग्रन्थगुरु और अहिंसा धर्म ही तारनेवाले हैं। विशेष बात यह और हैं कि,—

" नारि जाति अति ही चपल, कीजो नहीं विश्वास ।
जेठी मा तरुणी बहिन, लघु सुता गिन तास ॥"

अर्थात् बड़ीको माता, बराबरवालीको बहिन और छोटी स्त्रियोंको बेटीके समान समझियेगा। परदेशमें नाना प्रकारके लोगों, धूर्त भरे रहते हैं, इसलिए सोच विचारकर ही कार्य कीजियेगा।

स्वामिन् ! मैं अज्ञान हूं, धीठ होकर आपके सन्मुख यह वचन कहती हूं, नहीं तो भला मेरी क्या शक्ति जो आपको समझा सकूं ? क्षमा कीजिये। एक बात यह और कह देती हूं कि यदि अपनी प्रतिज्ञापर बारह वर्ष पूर्ण होते ही आप न आए तो मैं दूसरे ही दिन प्रातःकाल जिनेश्वरी दीक्षा लेकर इस संसारके जालको तोड़ अविनाशी सुखके लिए इस पराधीन पर्यायसे छूटनेके उपायमें लग जाऊंगी। अर्थात् जिनदीक्षा-आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लूंगी।

तब श्रीपालजीने कहा—" प्रिये ! बारर कहनेसे क्या ? जो मेरा वचन है, उसे मैं अवश्य ही पालन करूंगा, इसके लिए सिद्धचक्रको साक्षी देता हूं" ऐसा कहकर ज्यों ही श्रीपालजी चलने लगे, त्योंही वह पुनः मोहवश स्वामीका पल्ला (चद्दर दुपट्टा) पकड़कर व्याकुल हो कहने लगी।

हे नाथ ! मैं तो जानती थी कि आप अबतक केवल विनोद ही कर रहे हैं, परन्तु आप तो अब हंसीको सच्ची करने लगे। क्या आप सचमुच ही चले जावेंगे ? भला यह अबला किस प्रकार कालक्षेप करेगी ? कृपा करो, दासीको अभय वचन दो, मैं आपके दर्शनकी प्यासी हूं। आपके बिना मुझे यह सब

सामग्री दुःखदायी है। यद्यपि मैनासुन्दरी सब जानती थी, परन्तु [illegible] ऐसा ही होता है।

जब श्रीपालजीने देखा कि स्त्रियां हठ पकड़ रही हैं, और इससे कार्यमें विघ्न होनेकी सम्भावना है, तब उपरी मनसे कुछ क्रोध करके बोले—

"स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा ही होता है कि वे हजार शिक्षा देनेपर अपनी चाल नहीं छोड़ती न कार्याकार्य ही विचार करती हैं। बस, छोड़ दे मुझे!"

यह सुन नेत्र भरकर कांपते२ मैनासुन्दरीने पल्ला छोड़ दिया, और नीची दृष्टि कर स्वामीके चरणोंकी ओर देखने लगी ठीक है, इसके सिवाय वह और कर ही क्या सकती थी? श्रीपालजीको उसकी ऐसी दीन दशा देखकर दया आ गई। ठीक है, दीनको देखकर किसे दया न होगी? पाषाण हृदय भी पिघल जायगा, जिसमें भी फिर अबलाओंका दीन होना तो पुरुषोंको और भी विह्वल बना देता है।

यद्यपि श्रीपालको दया आ गई थी, परन्तु पुरुषार्थका धुन [illegible] लगा रहा था। इसलिए वे किसी प्रकार अपने विचारको बदल नहीं सके। किन्तु अपने विचारपर दृढ़ बने रहकर दयार्द्र स्वरसे बोले—

प्रिये! चिन्ता न करो। तुम यथार्थमें सती शीलवती साध्वी हो। तुम्हारा रुदन करना, मेरे चित्तको व्याकुल कर रहा है जो कि मेरी यात्रामें विघ्न करनेवाला है, इसलिये मेरे मुंहसे ये कठोर शब्द निकल गये हैं। तुम ऐसा कभी अपने मनमें नहीं विचारना कि तुमसे मेरा प्रेम किसी प्रकार कम हो गया है, किंतु जिस प्रकार तुम मेरे जानेसे दुःखित हो, मैं भी तुम्हें छोड़नेमें उससे किसी प्रकार कम दुःखी नहीं हूं।

"कहन सुननकी बात नहिं, लिखो पढ़ी नहिं जात ।
अपने जियमें जानियो, हमरे जियकी बात ॥"

परन्तु इस समय मुझे एक बार जाना ही उचित है। तुम हठ न करो और हर्षित होकर मुझे जानेके लिए अनुमति दो। निदान मैनासुन्दरीने हाथ जोड़ नमस्कार कर पतिके चरणोंमें मस्तक रख दिया। इस प्रकार श्रीपाल स्त्रीको समझाकर डरते डरते माताके पास आज्ञा लेनेको गये। मनमें सोचते जाते थे कि क्या जाने माता आज्ञा देगी या नहीं? यहांसे तो किसी प्रकार निबटेरा हो गया है।

इस प्रकार सोचते२ जाकर मातांके चरणोंमें मस्तक झुका दिया. दोनों हाथोंकी अंगुली जोड़कर बीन हो खड़े हो गये। माता पुत्रका बिना समय आगमन देखकर चिंतावती होकर बोली—

'ऐ पुत्र! इस समय ऐसी आतुरतासे तेरे आनेका कारण क्या है? तब श्रीपालने अपने मनका सब वृत्तांत कहकर विदेश जानेकी आज्ञा मांगी। सुनते ही माता अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगी—ऐ पुत्र! एक तो पूर्व असाता कर्मोंने पहिले ही तुमसे वियोग कराया था सो जैसे तैसे बड़े कष्टसे बहुत दिनोंमें तुमसे मिलकर अपने हृदयकी दाह शांत की थी, परन्तु क्या अब भी निर्दयी कर्म न देख सका जो पुनः पुत्रसे विछोह कराना चाहता है! ऐ पुत्र! तुझे यह कैसी बुद्धि उत्पन्न हुई है? ऐ बेटा! अभी तो मैं तुझे देखकर तेरे पिताके वियोगके दुःखको भूली हुई हूँ, सो तेरे बिना मैं कैसे दिन व्यतीत करूंगी?"

माताके ऐसे वचन सुनकर श्रीपाल बड़ी नम्रतासे बोले - "हे माता! मुझे इस समय जाना ही उचित है क्योंकि यहां रहनेसे यद्यपि मुझे कोई दुःख नहीं है, परन्तु मैं राजजंवाई कहकर बुलाया जाता हूँ, और मेरे पिताका, कुलका व देशका नाम कोई नहीं लेता है, इसीसे मेरा चित्त व्याकुल है।

क्योंकि जिस पुत्रसे पितादि गुरुजनों कुल व देशका नाम न चले वह पुत्र नहीं, किंतु कुलका कलंक है। उनका जन्म ही होना न होनेके समान है। इसलिए माताजी! मुझे सहर्ष आज्ञा व आशीष दीजिए, जिससे मेरी यात्रा सफल हो। मैं शीघ्र ही (१२ वर्षमें) लौटकर सेवामें उपस्थित होऊंगा। आप भी जिनेन्द्रका ध्यान कीजिए। और आपकी वधू (मैनासुन्दरी) आपकी सेवामें रहेगी ही तथा सातसौ आज्ञाकारी सुभट भी आपकी शरणमें उपस्थित रहेंगे।

माता कुन्दप्रभा पुत्रका अभिप्राय जान गई, उसे निश्चय हो गया कि अब पुत्र जानेसे न रुकेगा इसलिये हठकर रखना ठीक नहीं है और वह कोई बुरे अभिप्रायसे तो जा नहीं रहा है इत्यादि, तब वह अपने मनको दृढ़ कर बोली—

"प्रिय पुत्र! तुझे जानेकी आज्ञा देते हुए मेरा जी निकलता है, परन्तु अब मैं तुझे रोकना भी नहीं चाहती। इसलिये यदि जाते तो जाओ, और सहर्ष जाओ। श्री जिनेन्द्रदेव गुरु और धर्मके प्रभावसे तुम्हारी यात्रा सफल होवे। परन्तु हे पुत्र! विदेशका काम है बहुत होशियारीसे रहना। परधन और परस्त्रियों पर दृष्टि न डालना। सब जीवोंको आप समान जानना। कहा है—

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः जानाति स पण्डितः॥

तथा झूठे व दम्भी (छली) लोगोंका साथ कभी नहीं करना, किसीको भूलकर भी कुवचन नहीं कहना, मद्यपायी मांस भक्षक लोगोंके निकट न रहना न उनसे व्यवहार करना, जूआ (द्यूत) कभी नहीं खेलना, पानी (नदी), ठग, कोतवाल, कृपण, हठी, स्त्री, हथियार, अंध पुरुष, नखी पशु, शृंगवाले पशु, वेश्या, रोगी, ऋणी, बंधुवा (कैदी), शत्रु, जुवारी, चोर, असत्यभाषी,

आदि किसीका विश्वास नहीं करना, क्योंकि इनकी प्रीति गुड़ लपेटी छुरीकी तरह घातक है ।

नखखो, लबखो, जटाधारी, मुंडे हुए भस्मधारी, भेषी व वनचर, कुब्जक, बौना (वामन) काना केरा (कंजा नेत्रवाला), छोटी गरदनवाला आदमी, डांकनी, शांकनी, दासी, कुट्टनी (दूती) इनका भी विश्वास न करना । स्वस्त्री सिवाय अन्य स्त्रियां माता, बहिन, बेटीके समान जानना । अतिद्रव्य व ऐश्वर्य हो जानेपर भी अहंकार नहीं करना, निरन्तर पंच-परमेष्ठीका ध्यान हृदयमें रखना । भूलकर भी सिवाय जिनेंद्र-देव निर्ग्रंथ गुरु और दयामय जिनवर कथित धर्मके अन्य कुदेव, कुधर्म व कुगुरुकी सेवा नहीं करना, और सिद्धचक्र व्रतका मन, वचन, कायसे पालन करते रहना ! ऐ पुत्र ! ऐ मेरे वचन दृढ़ कर पालना, भूलना नहीं, ऐसा कहकर माताने आशीर्वाद दिया—

"श्री बढ़े अरु अतुल बल बढ़ें धर्ममें नेह ।
चतुरंग दलको संग ले आवो सुत निज गेह ॥
धन्य महूरत धन घड़ी, धन्य सुवासर सोय ।
जा दिन बहुरि कुशलसहित, नैनन देखूं तोय ॥"

ऐसे शुभ वचन कहकर माता श्रीपालके मस्तकपर दही दूध और अक्षत डालती हुई, और मस्तकमें मांगलीक कुमकुमका तिलक करके श्रीफल दिया तथा निछावर की । धायने भी आकर शुभ सूचना दी सो श्रीपालने हर्षित होकर ली । फिर सर्व स्वजनोंने सहर्ष आज्ञा दी । इसप्रकार उसी रात्रिके पिछले पहरमें श्रीपाल-जीने सर्व उपस्थित जनोंको यथायोग्य धैर्य देकर पंचपरमेष्ठीका उच्चारण करते हुए, हर्षित हो, उत्साह सहित प्रयाण किया और सब स्वजन श्रीपालको बिदाकर निज स्थानको पधारे ।

विद्याओंकी सिद्धि

श्रीपालजी घरसे प्रस्थान कर अपने साथ चन्द्रहास खड्ग और चमर आदि सम्पूर्ण आयुध साथ लिए हुए अति शीघ्रतासे अनेक वन, पर्वत, गुफा, सरोवर, खाई, नदी पुर, पट्टनादिकों उल्लंघन करते हुए पांव प्यादे चलते चलते वत्सनगरमें आये। और नगरकी शोभा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये क्योंकि उस नगरमें नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित बड़े२ उत्तुंग महल यथाक्रमसे बने हुये थे। द्वारपर सुवर्ण कलश स्थापित थे।

नगरमें चतुर्वर्णके नरनारी अपने२ योग्य स्थानोंमें निवास करते थे। बाग बगीचोंसे नगर सुसज्जित हो रहा था। उसी नगरके निकट नन्दन वनके समान एक मनोहारमणीक उपवन दिखाई पडा। सो श्रीपालजीने उसकी स्वाभाविक सुन्दरता देखनेकी इच्छासे उसमें प्रवेश किया। उस स्थानकी शोभाको देखते और मन्द सुगन्ध पवनसे चित्तको प्रसन्न करते हुए जब वे वहां फिर रहे थे कि उन्होंने उसी (चंपक) वनमें एक वृक्षके नीचे किसी वीर पुरुषको वस्त्राभूषणसे अलंकृत, क्षीण शरीर और क्लेशयुक्त होकर मंत्र जपते हुए देखा।

वे उसे देखकर सोचने लगे कि इतना क्लेश उठानेपर भी मालूम हुआ है कि इसे मंत्र सिद्ध नहीं हुआ है। कदाचित् इसीसे उसका चित्त उदास हो गया होगा। तब श्रीपालने उसके निकट जाकर पूछा—

"हे मित्र! तुम कौनसे मंत्रकी आराधना कर रहे हो कि जिससे तुम्हारे चित्तकी एकाग्रता नहीं होती है?" यह वचन सुनकर वह वीर चौंक उठा, और इनका रूप देखकर हर्षित हो बहुत आदरपूर्वक विनयसहित बोला—हे पथिक! मुझे मेरे गुरुने विद्याका मंत्र दिया था, सो मैं उसीका जाप कर रहा हूं।

परन्तु मेरा चंचल चित्त स्थिर नहीं रहता है, और इससे मंत्र भी सिद्ध नहीं होता है। इसलिये तुम इस विद्याका साधन करो। क्योंकि तुम सहनशील मालूम होते हो, सो कदाचित् तुम्हें यह सिद्ध हो जाय। तब श्रीपालजी बोले—

भाई! आपका कहना ठीक है, परन्तु सोना रत्नके साथ ही शोभा देता है, साधु क्षमासे शोभा देता है, जिनेन्द्रका स्तवन प्रातःकाल ध्यानपूर्वक ही शोभा देता है, राजा सैन्य सहित ही सोहता है, श्रावक दयासे ही सोहता है, बालक खेलते हुए सोहता है, स्त्री शील होनेसे शोभा देती है, पंडित शास्त्र पढ़ते हुए ही शोभा देते हैं, द्रव्य दानसे शोभा पाता है, सरोवर कमलसे शोभता है, शूर युद्धमें शोभा देता है, हाथी सैन्यमें शोभता है, वृक्ष ठण्डी और सघन छायासे सोहता है, दूत कठिन वचनोंसे, कुल सुपुत्रसे घोर परोपकारसे, शरीर निर्भयतासे और तंत्र साधन स्थिर चित्तवालोंको ही शोभा देता है। इसलिए हे भाई! मैं तो पथिक (रास्तागीर) हूं मुझे स्थिरता कहां? और मंत्रसिद्धि कैसी?"

यह सुनकर वह वीर बोला—"हे कुमार! आपका तेजस्वी मुखारविंद ही बता रहा है कि आप इसके योग्य हैं! इसलिये मुझे अभय वचन दो। आप मेरे ही भाग्यसे यहां आये हो। इसलिए अब आप अविलम्ब स्वस्थचित्त होकर इस मंत्रका आराधन करो। आपको श्रीगुरुकी कृपासे यह विद्या सहज ही सिद्ध हो जाएगी। ऐसा कहकर वह मंत्र और विधि जैसा उसके गुरुने बतलाया था उसने श्रीपालको बतला दी।

तब श्रीपालजी उसके बारम्बार कहने व आग्रह करनेसे मन वचन कायकी चंचलताको छोड़कर शुद्धतापूर्वक निश्चय आसन लगाकर मंत्र जपनेके लिये बैठ गये। जिससे एकाग्र चित्त होनेके कारण उनको एक दिनमें ही वह विद्या सिद्ध हो गई। तब

सरलता हुई देखकर वह बोल उठा और श्रीपालको प्रणाम व स्तुति करके कहने लगा कि धन्य हैं आपके साहस व धीरताको! यह विद्या अब अपने पास रखिये और मुझे कृपाकर आज्ञा दीजिये कि मैं अपने घर जाऊं।

तब श्रीपालजी बोले–भाई मुझे यह उचित नहीं है कि रास्ता चलते किसीकी वस्तु छीन लूं। पराये पुत्रसे स्त्री पुत्रवती नहीं कहलाती है, पराये धनसे कोई नहीं धनी होता, त्यों ही पराई विद्या व बलसे बली होना नहीं समझना चाहिये, और फिर मैंने किया ही क्या है? केवल आपके कहनेसे अपनी शक्तिकी परीक्षा की है। सो आप अपनी विद्या लीजिये। ऐसा कह वह विद्या उसी विद्याधर वीरको देकर आप अलग हो गये। तब विद्याधरने स्तुतिकर कहा–'भो स्वामिन्! यदि आप इसे स्वीकार नहीं करते तो ये जल-तारिणी व शत्रु-निवारिणी दो विद्यायें अवश्य ही भेंट स्वरूप स्वीकार कीजिये, और मुझपर अनुग्रह कर मेरे गृहको अपने चरणकमलोंसे पवित्र कीजिये।

ऐसा कहकर उक्त दोनों-जलतारिणी और शत्रु निवारिणी विद्यायें देकर बड़े आदर सहित वह श्रीपालजीको स्वस्थान पर ले गया, और कुछ दिनतक अपने यहां रख उनकी बहुत शुश्रूषा की पश्चात् उनकी इच्छानुसार विदाकर आप सानंद आयु व्यतीत करने लगा। इस प्रकार श्रीपालजीने घरसे निकलकर वत्सनगरके विद्याधरको अपना सेवक बनाया और उससे उक्त दो विद्यायें भेंटस्वरूप ग्रहण कर आगेको प्रस्थान किया। ठीक है—

"स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।"

अर्थात्–"गुणका आदर ठौर सब, राजाका निज देश" तात्पर्य–प्रत्येक पुरुषको गुणवान् होनेका प्रयत्न करना चाहिए, न कि द्रव्यवान् होनेका, क्योंकि गुणवानके आश्रय ही द्रव्य रहता है, इसलिये गुणवान होना ही श्रेयस्कर है।

धवलसेठका वर्णन

श्रीपालजी विद्याधरसे जल-तारिणी और शत्रु-निवारिणी दो विद्यायें ग्रहण कर वत्सनगरसे निकलकर और अनेक वन उपवनोंकी शोभा देखते हुए भृगुकच्छपुर (भडौंच) आये। वहा नगरकी शोभा देखकर चित्तमें प्रसन्न हुए। क्योंकि यह नगर समुद्रके तुल्य नर्मदा नदीके किनारे होनेसे अतिशय रमणीक भासता था। श्रीपाल घूमते२ उस नगरसे किसी उपवनमें जा पहुँचे और वहां पास ही एक टेकड़ी पर श्री जिनभवनमें देखकर अति आनदित हुये और प्रभुकी भक्ति वंदना कर अपना जन्म धन्य माना। इस प्रकार वे सिद्धचक्रका आराधन करते हुये कुछ काल तक उसी नगरमें रहे।

एक दिन कौशांबी नगरीका एक धनिक व्यापारी (धवलश्रेष्ठि) व्यापारके निमित्त देशांतरको जानेके लिये पांचसौ जहाज भरकर इसी नगरके समीप आया। पवनके योगसे उसके जहाज पासकी खाडीमें जा पडे। उस सेठके साथ जितने आदमी थे उन सबने मिलकर अपनी शक्तिभर उपाय किया, परन्तु वे जहाज न चला सके तब सेठको बड़ी चिन्ता हुई, उसका शरीर शिथिल हो गया।

निदान यह उदास होकर सोचते२ जब कुछ उपाय न बन पड़ा तब लाचार हो नगरमें आया और किसी नगर निवासी निमित्त ज्ञानीसे अपना सब वृत्तांत कहकर जहाजके अटक जानेका कारण पूछा। तब उस नगरवासीके निमित्तज्ञानी (ज्योतिषी) ने कहा-सेठ! आपके अशुभ कर्मके उदयसे ये जहाज अटक गये हैं। उनको जलदेवोंने कील दिये हैं, सो या तो कोई महागुणवान्, लक्षणवंत, गंभीर पुरुष, जो निर्भय हो, वह आकर इन जहाजोंको चलावेगा तो चलेंगे, अथवा यहांपर

एक ऐसे ही महापुरुषका बलिदान करना होगा। यह सुनकर सेठ अपने डेरेमें आया, और मंत्रियोंसे मंत्र करके उस नगरके राजाके समीप गया और बहुमूल्य भेंट देकर राजाको प्रसन्न किया और मौका पाकर अपना सम्पूर्ण वृत्तांत कह राजासे एक आदमीके बलि देनेकी आज्ञा प्राप्त कर ली। तुरन्त ही ऐसा मनुष्य जो अकेला गुणवान और निर्भय हो उसे ढूंढनेके लिये चारों ओर आदमी भेजे। सो नौकर फिरते२ उसी बगीचेमें, जहां कि श्रीपालजी एक वृक्षके नीचे शीतल छायामें सो रहे थे पहुंचे।

उनको देखकर वे विचारने लगे कि हमें जैसा पुरुष चाहिये था, यह ठीक वैसा ही मिल गया है। बस, अपना काम बन गया। परन्तु उन्हें जगानेको किसीकी भी हिम्मत नहीं पड़ती थी। सब लोग परस्पर एक दूसरेको जगानेके लिये प्रेरणा कर रहे थे कि इतनेमें श्रीपालजीका नींद अपने आप ही खुल गई। उन्होंने आंखें खुलते ही अपने आपको चारों ओरसे घिरा हुआ देखा, तब वे निशंक होकर बोले—

"तुम लोग कौन हो? और मेरे पास किसलिये आये हो?" यह सुनकर वे नौकर बोले–"हे स्वामिन्! कौशांबी नगरीका एक धनिक व्यापारी, जिसका नाम धवलसेठ है, व्यापार निमित्त पांचसौ जहाज लेकर विदेशको जा रहा था, यहां किसी कारणसे उसके जहाज खाडीमें अटक गये हैं सो उसने मंत्रियोंसे मंत्र करके विवेक रहित हो, जहाज चलानेके लिये एक आदमीकी बलि देना निश्चय कर हमको मनुष्यकी तलाशमें भेजा है।

अभीतक ऐसा मनुष्य हमको कोई मिला हो नहीं है, और सेठका डर भी बहुत लगता है कि खाली जायेंगे तो वह हमें

मार डालेगा, और नहीं आवेंगे तो हमको ढूंढकर अधिक कष्ट देवेगा। इसलिये अब आपका शरण है, किसी तरह बचाइये। यह सुनकर श्रीपाल बोले—भाइयो ! तुम भय मत करो। तुम कहो तो क्षणभरमें करोड़ों वीरोंका मदन कर डालूं और कहो तो वहां चलकर सेठका काम कर दूं।

तब वे आदमी स्तुति करके गद्‌गद् वचनोंसे बोले—

"स्वामिन् ! यदि आप वहां पधारेंगे तो अतीव कृपा होगी, और हम लोगोंके प्राण भी बचेंगे व आपका यश बहुत फैलेगा। आप धीरवीर हो, आपके प्रसादसे सब काम हो जाएगा यह सुनकर श्रीपालजी तुरन्त ही यह विचार करें कि सेठमें अदृष्ट क्या है ? क्यों कौतुक होता है ? चलकर परीक्षा करूं ? यह विचार करके उन लोगोंके साथ चलकर शीघ्र ही धवलसेठके पास पहुँचे।"

वे लोग सेठसे हाथ जोड़कर बोले—"हे सेठ ! आप जैसा पुरुष चाहते थे, सो यह ठीक वैसा ही लक्षणवन्त है। अब आपका कार्य निःसन्देह हो जाएगा। यह सुनकर उस लोभांध सेठने बिना ही कुछ सोचे और बिना पूछे कि तुम कौन हो ? कहांसे आये हो ? श्रीपालको बुलाकर उबटन कराकर स्नान करवाया, इतर फुलेल चन्दनादि लगाकर उत्तम वस्त्राभूषण पहराये, और बड़े बाजे-गाजे सहित उस स्थानपर जहां जहाज अटक रहे थे ले गये।"

अब वहां शूरवीरोंने इनके मस्तकपर चलानेके लिए खड्ग उठाया, तब श्रीपालजी कौतुकसे मनमें यह विचारते हुए कि अब इन सबका काल निकट आया है। इसलिये वे बोले—

" अरे सेठ ! तुझे यहां बध करनेसे मतलब है या कि अपने जहाजोंको चलानेसे ? "

सेठने उत्तर दिया—हमको जहाज चलाना है यदि तू चला देवेगा, तो तूझे फिर कोई कष्ट देनेवाला नहीं है ।

तब श्रीपालजी बोले—" अरे मूर्ख ! तू लोभवश यहां नरबलि देनेको तैयार हो गया, और दया धर्मको बिल्कुल जलांजुलि दे दी ! " ठीक है--" अर्थी दोषं न पश्यति " कहा भी है----

" लोभ बुरा संसारमें, सुध बुध सब हर लेय ।
बाप बखानो पापको, शुभ्र पयानो देय ॥ "

क्या तू यह जानता था कि मैं यहां तेरी इच्छानुसार बलि हो जाऊंगा ? बता तो तेरे पास कितने शूरवीर हैं ? उन सबको एक ही वारमें चूरचूर कर डालूंगा । देखूं कौन साहस कर मेरे सामने बलि देनेको आता है ? कायरों ! आओ ! शीघ्र ही आओ ! देर मत करो ! और मेरे पुरुषार्थको देखो ! दुष्टों ! तुमको कुछ भी लज्जा भय व विवेक नहीं, जो केवल लोभके वश होकर अनर्थ करनेपर कमर बांध ली है । आओ, मैं देखता हूँ कि तुमने अपनी-अपनी मातावोंका कितना दूध पिया है ? श्रीपालजीने ऐसे साहस युक्त निर्भय वचन सुनकर धवलसेठ और उसके सब आदमी मारे भयके कांपने लगे, और विनय सहित बोले—

"स्वामिन् हम लोग अविवेकी हैं। आपका पुरुषार्थ बिना जाने ही हमने यह खोटा साहस किया था। आप दयालु, साहसी, न्यायी और महान् गुणवान् हैं। आपकी बडाई कहांतक करें ? क्षमा करो प्रसन्न होओ और हम लोगोंका संकट दूर करो।

इस प्रकार अनुपम विनययुक्त वचनोंसे श्रीपालजीको दया आ गई। इसलिये उन्होंने आज्ञा दी—'अच्छा तुम लोग अपने जहाजोंको शीघ्र तयार करो।"

तुरन्त ही सब जहाज तैयार किये गये ! जहाजोंको तैयार देखकर श्रीपालजीने पंचपरमेष्ठीका जाप करके सिद्ध-चक्रका आराधन किया। और ज्योंही उनको ढकेला कि वे सब जहाज चलने लगे। सब ओर जयजयकार शब्द होने लगा, खुशी मनाई जाने लगी, बाजे बजने लगे। सब लोग श्रीपालजीके साहस, रूप, बल व पुरुषार्थकी प्रशंसा करने लगे, और सबने उनको अपने साथ ले जानेका विचार करके विनय की, कि यदि आप हम लोगों पर अनुग्रह कर साथ चलें, तो हमारी यह यात्रा सफल हो।

तब श्रीपालजीने कहा—"सेठजी, यदि आप अपनी कमाईका दशांश भाग $\frac{1}{10}$ मुझे देना स्वीकार करें तो निःसंशय मैं आपके साथ चलूं" सेठने यह बात स्वीकार की और श्रीपालजीने धवलसेठके साथ प्रस्थान किया।

धवलसेठको चोरोंसे छुड़ाना

समुद्रमें जब कि धवलसेठके जहाज चले जा रहे थे और सब लोग अपने२ रागमें लवलीन थे, अर्थात् कोई श्रीजीकी आराधना करते थे, कोई नाचरगमें रंजित थे, कोई समुद्रको देखकर उसकी लहरोंसे भयभीत हो कायरसे हो रहे थे, कि उसी समय मरजिया (जहाजके सिरेपर बैठकर दूर तक देखनेवाला) एकदम चिल्ला उठो–शूरवीरो ! होशयार हो जाओ। अब असावधानीका समय नहीं है। देखो, सामनेसे एक बड़ा भारी डाकुओंका दल आ रहा है। उनमें बड़े२ वीर लोग दृष्टिगोचर होते हैं, जोकि हथियारबद्ध हैं।

उसके ऐसा कहतेर हो जहाजमें एकदम खलबली मच गई। सामन्त लोग हथियार लेकर सामने आ गये और कायर भयभीत होकर यहां वहां छुपने लगे। देखते ही देखते लुटेरोंका दल निकट आ गया और उन्होंने आकर सेठके शूरोंको ललकारा।

अरे मुसाफिरो ! ठहरो, कहां जाते हो ? अब तुम्हारा निकल जाना सहज नहीं है ! या तो हमारा साथ स्वीकार करो, या अपनी सब सम्पत्ति हमें सौंपकर अपना मार्ग लो, अन्यथा तुम्हारा यहांसे जाना नहीं हो सकता। यदि तुममें कोई साहसी है तो सामने आ जावे। फिर देखो, कैसा चमत्कार दिखाई पड़ता है। सेठके शूरवीर उन डाकुओंकी ललकार सह न सके, तुरंत ही टीडी दलके समान टूट पड़े, और दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा। बहुतसे डाकू मारे गये, और कई पकड़े भी गये, जिससे वे भाग पड़े और सेठके दलमें आनंद ध्वनि होने लगी, परन्तु इतनेहीसे इस आपत्तिका

अन्त नहीं हुआ। वे डाकू लोग कुछ दूरतक जाकर पुनः इकट्ठे हुये और स्वस्थचित्त हो परस्पर सलाह कर निश्चय किया कि एक बार फिर धावा मारना चाहिये।

बस, उन लोगोंने पुनः आकर रंगमें भंग डाल दी, और भूखे सिंहकी तरह सेठके जहाजों पर टूट पड़े। इस समय डाकुओंकी बाजी रह गई और वे लोग बातकी बातमें धवल-सेठको जीता ही बांधकर ले गये। यह देख सेठकी सारी सेनामें कोलाहल मच गया। यहांतक तो श्रीपालजी चुपचाप बैठे हुये यह सब कौतुक देख रहे थे, सो ठीक है, क्योंकि धीरवीर पुरुष छोटी२ बातों पर ध्यान नहीं देते हैं, क्षुद्र पुरुषों पर उनका क्रोध नहीं होता है, चाहे कोई इस तरहका कितना ही उपद्रव क्यों न करे।

जैसे हाथीके उपर बहुतसी मक्खियां भिनभिनाया करती हैं, परन्तु उसे कुछ नुकशान नहीं पहुंचा सकती हैं, ऐसा समझकर हाथी उनकी कुछ भी परवाह नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि मेरे केवल कानके हिला देनेसे ही सब दिशा विदिशाओंकी शरण लेने लगेंगी—भाग जावेंगी वैसे ही वीरवीरोंको अपने बलका भरोसा रहता है। कहा भी है—

"गीदड़ आये गोद, सिंह नहिं हाथ पसारे।
महामस्त गजराज, देखकर कुम्भ विदारे॥
तैसे ही सामन्त, लड़े नहिं कायर जनसे।
देख बली परचण्ड, भगें नहिं कबहूं रणसे॥
प्रबल शत्रु मद परिहरें, तो लघुकी क्या बात।
के जूझें रणके विषे, कै बन कर्म खिपात॥"

निदान सेठको बांधकर ले जाते हुए देखकर श्रीपालसे रहा न गया, इसलिये वे तुरन्त उठ खडे हुए। तब इन्हें उठा देख सेठके आदमी रुदन करते हुए आये और करुणा-जनक स्वरसे बोले—

स्वामिन् ! बचाओ। देखो, सेठको डांकू बांधे लिये जा रहे हैं। श्रीपाल उनकी दीन-वाणी सुनकर और उन डांकुओंकी निष्ठुरताको देखकर बोले—

"अरे वीरो ! धैर्य रक्खो ! चिन्ता न करो ! मैं देखता हू चोरोंमें कितना बल है ! अभी बातकी बातमें सेठको छुडाकर लाता हूँ। श्रीपालजीके वचनोंसे सबको संतोष हुआ और श्रीपालने तुरन्त ही शस्त्र धारणकर चोरोंके सामने जाकर ललकारा—

अरे नीचो ! क्या तुम मेरे सामने सेठको ले जा सकते हो ? कायरो ! खडे रहो और सेठको छोडकर अपनी क्षमा कराओ, नहीं तो अब तुम्हारा अन्त हो आया जानो ! श्रीपालकी यह सिंहगर्जना सुनने मात्रसे ही डांकू लोग मृगदलके समान तितरबितर हो गये, और किसी प्रकार अपना बचाव न देखकर थर २ कांपने लगे। निदान यह सोचकर कि यदि मरना होगा तो इन्हींके हाथसे मरेंगे, अब तो इनका शरण लेना ही श्रेष्ठ है। यदि इन्हे दया आ गई तो बच भी जावेंगे नहीं तो ये एक एकको पकड़ कर समुद्रमें डुबाकर नामनिःशेष कर देंगे। यह सोचकर डांकु लोग श्रीपालकी शरणमें आये और सेठका बन्धन छोड़कर नत-मस्तक होकर बोले—

"स्वामिन् ! हम लोग अब आपकी शरण हैं, जो चाहे सो कीजिये !" तब श्रीपालने धवलसेटसे पूछा-"तात ! इन

लोगोंके लिए क्या आज्ञा है ?" धवलसेठ तो क्रूर-चित्त व अविचारी था, बोला—इन सबको बहुत कष्ट देकर मारना चाहिये। तब श्रीपाल उसके कठोर वचन सुनकर बोले—तात ! उत्तम पुरुषोंका कोप क्षणमात्र होता है, और शरणमें आये हुयेको तो कोई नहीं मारता। दया मनुष्योंका प्रधान भूषण है। दयाके बिना मनुष्य और सिंहादि क्रूर जीवोंमें क्या अंतर है ? दयाके बिना जप तप शील संयम योग आचरण सब झूठे है, केवल कायक्लेश मात्र है। इसलिये दया कभी नहीं छोड़ना चाहिये। और फिर जब हम सरीखे पुरुष आपके साथ हैं तो आपको चिन्ता ही किस बातकी है ?

तब लज्जित होकर सेठने कहा—हे कुमार ! आपको अच्छा हो सा करो, मुझे उसीमें संतोष है। तब श्रीपालजी उन चोरोंको लेकर अपने जहाजपर आये और सबके बंधन छोड़कर बोले—वीरो ! मुझे क्षमा करो ! मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया। आप यदि हमारे स्वामीको पकड़कर न ले आते तो यह समय न आता, इत्यादि। सबसे क्षमा कराकर सबको स्नान कराया, और वस्त्राभूषण पहिराकर सबको मिष्टान्न भोजन कराया, तथा पान इलायची इत्र फुलेलादि द्रव्योंसे भले प्रकार सम्मानित किया। वे डांकू श्रीपालजीके इस वर्तावसे बड़े प्रसन्न हुये, सहस्र मुखसे स्तुति करने लगे और अपना मस्तक श्रीपालके चरणोंमें धरकर बोले—

हे नाथ ! हम पर कृपा करो ! धन्य हो आप ! आपका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। इस तरह परस्पर मिलकर वे डांकू श्रीपालसे विदा होकर अपने घर गये और श्रीपाल तथा धवलसेठ आनंदसे मिलकर अपनी आगामी यात्राका विचार कर प्रणाम करनेको उद्यमी हुये।

डाकुओंकी भेंट

वे डाकू लोग श्रीपालसे विदा होकर अपने स्थान पर गये और श्रीपालके साहस व पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे कि धन्य है उस वीरका बल कि जिसने बिना हथियारके इतने डाकू बांध लिए और फिर सबको छोड़कर उनके साथ बड़ा भारी सलूक किया। इसलिये इसका इसके बदले अवश्य ही कुछ भेंट करना चाहिये। क्योंकि हम लोगोंने बहुतसे डाके मारे, और अनेक पुरुष देखे है। परन्तु ऐसा महान पुरुष आज तक कहीं नहीं देखा है। इसने पूर्व जन्मोंमें अवश्य ही महान तप किया है, या सुपात्र दान दिया है, इसीका यह फल है। ऐसा विचार कर वे लोग बहुतसा द्रव्य सात जहाजोंमें भरकर श्रीपालके निकट आये। और विनय सहित भेंट करके विदा हो गये। ठीक है, पुण्यसे क्या नहीं हो सकता है? कहा है—

"वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थलं वा, रक्षंति पुण्यानि पुरा कृतानि॥

अर्थात् वनमें, रणमें, शत्रुके सन्मुख, जलमें, अग्निमें, महासागरमें, पर्वतकी शिखापर, सोते हुये, प्रमाद अवस्थामें, अथवा विषम स्थलमें पूर्व पुण्य ही सहायता करता है।

तात्पर्य यह है कि जीवोंको सदैव अपने भाव उज्जवल रखना चाहिये, सदा सबका भला और परोपकार करना चाहिये। क्योंकि पुण्यके उदयसे शत्रु भी मित्र और पापोदयसे मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

—❀—

रयनमंजूषाकी प्राप्ति

इस तरह श्रीपाल उन डाकुओंसे रत्नोंके सात जहाज भट लेकर और उनको अपना आज्ञाकारी बनाकर धवलसेठके साथ२ रातदिन प्रयाण करते हुये बड़े आनंद और कुशलतासे हंसद्वीपमें पहुँचे । यह द्वीप बन उपवनोंसे सुशोभित था । इसमें बड़ी२ अठारह और छोटी२ रत्नोंकी अनेक खानें थीं । गजमोती बहुतायतसे मिलते थे । सोने चांदीकी भी बहुतसी खानें थीं । चन्दनके वनोंकी मन्द सुगन्ध पवन चित्तको चुरा लेती थी । केशरके बाग अतिशोभा दे रहे थे । कस्तूरीकी सुगन्ध भी मस्तकको तहस-नहस किये देती थी । तात्पर्य यह कि यह द्वीप अत्यन्त शोभायमान था । ऐसी वस्तु कदाचित् ही कोई होगी, जो वहां पैदा न होती हो । वहांपर रहनेवाले मनुष्य प्रायः सभी धन कण कंचनसे भरपूर थे । दुःखी-दरिद्री दृष्टिगोचर नहीं होते थे । नगरमें बड़े २ ऊंचे २ महल बन रहे थे ।

इस द्वीपका राजा कनककेतु और रानी कंचनमाला थी । ये दंपति सुखपूर्वक काल व्यतीत करते और न्यायपूर्वक प्रजाको पालते थे । राजाके दो पुत्र और रयनमंजूषा नामकी एक कन्या थी । सो जब वह कन्या यौवनवती हुई, तब राजाको चिंता हुई, कि इस कन्याका वर कौन होगा ? यह पूछनेके लिए राजा अपने दोनों पुत्रोंको लेकर उद्यानकी ओर मुनिराजकी तलाशमें गया, सो एक जगह वनमें अचल मेरुवत् ध्यानारूढ़ परम दिगम्बर मुनिको देखा । तीनों वहां जाकर भक्ति सहित नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा देकर बैठ गये और जब मुनिराजका ध्यान खुला तब वे विनयसहित पूछने लगे—

हे प्रभो ! आप जगत पूज्य, करुणासागर, कुमतिविनाशक ज्ञानसूर्य, शिवमगदर्शक, और समस्त दुःखहरण करनेवाले हो। हम अल्पबुद्धि कहांतक आपकी स्तुति करें ? निराश्रितको आश्रय देनेवाले सच्चे हितू आप ही है। हे दीन दयालु प्रभो ! मुझे एक चिन्ता उत्पन्न हुई है। वह यह है कि मेरी पुत्री रयनमंजूषाका वर कौन होगा ? सो संशय दूर हो।

तब वे परम दयालु समस्त शास्त्रोंके पारंगत मुनिराज अवधिज्ञानसे विचार करके बोले—'हे राजन् ! सहस्रकूट चैत्यालयके वज्रमयी कपाट जो महापुरुष उघाडेगा वही इस पुत्रीको वरेगा।" तब राजा प्रसन्नचित्त हो नमस्कार कर अपने घर आया और उसी समय नौकरोंको आज्ञा दी कि तुम लोग सहस्रकूट चैत्यालयके द्वारपर पहरा दो, और जो पुरुष आकर वहांके वज्रमई किवाड उघाडे उस पुरुषका भले प्रकार सन्मान करो और उसी समय आकर हमको खबर दो। राजाकी आज्ञा पालनकर नौकरोंने उसी समयसे वहां पहरा देना आरम्भ कर दिया।

धवलसेठने यहांकी शोभा और व्यापारका उत्तम स्थान देखकर जहाजोंके लंगर डाल दिए, और नगरके निकट डेरा किया, तथा धवलसेठ आदि कुछ आदमी बाजारकी हालचाल देखनेको नगरमें गये। श्रीपाल भी गुरुवचनको स्मरण करके कि जहां जिनमंदिर हो वहांपर प्रथम ही जिनदर्शन करना, नित्य षट् आवश्यक क्रियाओंकी यथाशक्ति पूर्णतः करना, इत्यादि जिनमंदिरकी खोजमें गये। सो अनेक प्रकार नगरकी शोभा देखते और मनको आनन्दित करते हुए वे एक अति ही रमणीक स्थानमें आये। वहां अतिविशाल उत्तंग सुवर्णका बना हुआ एक सुन्दर मंदिर देखा। देखते ही

आनंदित हो मंदिरके द्वार पर पहुँचे तो देखा कि दरवाजा क्यों बन्द है ? तब वे पहरेदार विनय सहित कहने लगे—

'महाराज ! यह जिनमंदिर है। वज्रके कपाटोंसे बन्द कराया गया है। इसमें और कुछ विकार नहीं है, परीक्षा निमित्त ही बन्द किये गये है । सो आज तक तो ये किवाड किसीसे नहीं उघाडे गये हैं । अनेकों योद्धा आये और अपना २ बल लगाकर थक गये, परन्तु किवाड न उघडे ।"

श्रीपाल द्वारपालोंके वचन सुनकर चुप हो रहे और मनमें हर्षित होकर सिद्धचक्रका आराधन कर ज्यों ही किवाड हाथसे दबाये त्यों ही वे खटसे खुल गये । तब श्रीपालने हर्षित होकर "ॐ जय, जय, जय, निःसहि, निःसहि, निःसहि ।" इत्यादि शब्दोंका उच्चारण करते हुए भीतर प्रवेश किया । और श्री जिनके सन्मुख खडे होकर नीचे लिखे अनुसार स्तुति करने लगे—

श्री जिनबिंब लखी मैं सार, मनवांछित सुख लहो अपार ।
जय जय निष्कलंक जिनदेव, जय जय स्वामी अलख अभेव ॥
जय जय मिथ्यातम हर सूर, जय जय शिव तरुवर अंकूर ।
जय जय संयमवन घन-मेह, जय जय कंचनसम द्युति देह ॥
जय जय कर्म विनाशन हार, जय जय भगवत् जग आधार ।
जय कंदर्प गज दलन मृगेश, जय चारित्र धुराधर शेष ॥
जय जय क्रोध सर्प हत मोर, जय अज्ञान रात्रिहर भोर ।
जय जय निराभरण शुभ सत, जय जय मुक्ति कामिनीकंत ॥
बिन आयुध कुछ शंक न रहे, रागद्वेष तुमको नहिं चहे ।
निराकरण तुम हो जिन चन्द्र, भव्य कुमुद विकसावन कंद ॥

आज धन्य वासर तिथि वार, आज धन्य मेरो अवतार ।
आज धन्य लोचन मम सार, तुम स्वामी देखे जु निहार ॥
मस्तक धन्य आज मो भयो, तुम्हरे चरण कमलको नयो ।
धन्य पांव मेरे भये अबै, तुम तट आय पहुँचो जबै ॥
आज धन्य मेरे कर भये, स्वामी तुम पद परश न लये ।
आज हि मुख पवित्र मुझ भयो, रसना धन्य नाम जिन लयो ॥
आज हि मेरो सब दुख गयो, आज हि मो कलंक क्षय भयो ।
मेरे पाप गये सब आज, आज हि सुधरो मेरो काज ॥
अति ही मुदित भयो मम हियो, पणविध नमस्कार जब कियो ।
धन्य आप देवनके देव, श्रीपालको निजपद देव ॥

इस प्रकार स्तुति करके फिर सामायिक, वन्दन, आलोचना, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्गादि षट् आवश्यक कर स्वाध्याय करने लगे । और वे द्वारपाल जो वहां पहरेपर थे, ऐसे विचित्र शक्तिधर पुरुषको देखकर आश्चर्यवंत हो, कितनेक तो वहां ही रहे, और कितनेक राजाके पास गये । और सम्पूर्ण वृतांत राजासे कह सुनाया, कि महाराज ! एक बहुरूपवान, गुणनिधान, सम्पूर्ण लक्षणोंका धारी महापुरुष जिनालयके द्वारपर आया और द्वार बन्द होनेका कारण पूछा और "ॐ नमः सिद्धम्" इस प्रकार उच्चारण कर निज कर-कमलोंसे सहजहीमें किवाड खोल दिये । इसलिये हम लोग आपकी आज्ञानुसार यह शुभ समाचार कहने आये हैं ।

राजा यह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, और समाचार देनेवालोंको बहुत कुछ पारितोषिक दिया । पश्चात् बड़े उत्साह व गाजेबाजे सहित सहस्रकूट चैत्यालय पहुँचा । प्रथम ही श्री जिनको नमस्कार कर स्तुति करने लगा—

नमो तुम जिनवर देव, भव भव मिले तुम्हारो सेव।
तुम जिन सर्व दुःख परहर्न, श्रीलंकृत तुम भविजनसर्न ॥
तुम बिन जीव फिरे संसार, जोगो संकट सहे अपार।
तुम बिन करम न छोड़े संग, तुम बिन उपजे मन भ्रमभंग ॥
तुम बिन भव आतापहिं सहे, तुम बिन जन्म जरा मृतु दहे।
तुम बिन कोऊ न लेय उबाल, तुम बिन कर्म मिटे न लगार ॥
तुम बिन दुरित दुःखको हरे, तुम बिन कौन परम सुख करे।
तुम बिन को काटे यमफंद, तुम बिन को पूजे आनन्द ॥
तुम बिन उपजी कुमति कुभाव, तुम बिन कोई न और सहाव।
तुम बिन हितू न दूजा कोय, तुम बिन शुभ गति कबहुं न होय ॥
तुम बिन मैं पापी जग भ्रम्यो, तुम बिन कालवाद सब गयो।
तुम बिन मैं दुःख पायो घनों, वेदन शूल कहां लग भनों ॥
तुम अनतक जिन लखो न कोय, दीनो आयु व्यर्थ सब खोय।
तातें अर्ज करूं सुनि लेव, कर्म अनादि काट मम देव।
सेवकको ओर तनिक निहार, जन्म मरण दुःख कीजे क्षार ॥

राजा इस प्रकार प्रभुकी वंदना करनेके पश्चात् श्रीपालके निकट आया, और यथायोग्य सत्कारके पश्चात् कुशलक्षेम और आगमनका कारण पूछने लगा—

हे कुमार! आपका देश कौन है? किस कारण आपका यहां शुभागमन हुआ है? इत्यादिक प्रश्न जब राजाने किए तब श्रीपाल मनमें विचार करने लगे, कि यदि मैं अपने अपना वृत्तांत कहूंगा, तो राजाको खातिरी (निश्चय) होना कठिन है, क्योंकि इस समय अपने कथनकी साक्षी करनेवाला कोई नहीं है, और बिना साक्षी सच भी झूठ हो जा सकता

है। इसलिये मैं राजाको किस प्रकार उत्तर दूं ताकि इनको विश्वास हो।

पुरुषको चाहिए कि जो कुछ भी कहें, उसके पहिले उसकी सत्यताकी सिद्धिके लिए साक्षी ढूंढ ले अथवा चुप हो रहे। इस प्रकार वे सोच ही रहे थे कि पूर्व पुण्यके योगसे दो अवधिज्ञानी मुनिराज विहार करते हुए कहींसे वहां आ गये। सो ये दोनों उन मुनिको देखकर परम आनन्दित हो उठ खड़े हुए और बड़ी विनयसे स्तुति करने लगे।

अहहा! धन्य भाग्य हम सार, भयो दिगम्बर गुरु निहार।
धनि तुम धर्म धुरंधर धीर, सहस बीस दो परिषह धीर॥
धन्य मोहतम हरन दिनन्द, भव्य कुमुद विकसावन चन्द।
कर्म बली जगमें परधान, ताहू हतनको आप कृपाण॥
सुर हूं सकहि न तुम गुण गाय, तो हमसे किम वरणे जांय।
हे प्रभु! हमपर होहु दयाल, धर्मबोध दीजिये कृपाल॥

इस प्रकार गुरुकी स्तुति करके वे दोनों निज २ स्थान पर बैठे। श्री गुरुने उनको 'धर्मवृद्धि' देकर इस तरह उपदेश दिया -

"ऐ जिज्ञासुओं! सर्व धर्म और सुखका मूल सम्यक्त्व है। इसके विना कुछ क्रिया कर्म जप तप संयम सब ही निर्मूल हैं। इसलिये सबसे पहिले जीवोंको यह सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहिये। यह सम्यक्त्व दो प्रकार है-एक निश्चय और दूसरा व्यवहार। निजस्वरूपानुभव स्वरूप निश्चय सम्यक्त्व है, और तत्वनिश्चय सम्यक्त्वके लिये साधनरूप प्रधान कारण है। इसलिये कारणमें कार्यका उपचार होनेसे उसे व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

तथा इसीप्रकार तत्वज्ञानके साधनभूत सच्चे देव गुरु और शास्त्र हैं। इसलिये इनके श्रद्धानको भी व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं। कारणसे कार्य होता है, इसलिये कारणकी उत्तमतापर ही कार्यकी उत्तमता समझनी चाहिए। तात्पर्य—सर्व दोषोंसे रहित ही (वीतराग) लोकालोकका ज्ञाता सर्वज्ञ और सर्व जीवोंका हित करनेवाला (हितोपदेशी) ऐसा तो देव अर्हंत ही है। अथवा समस्त कर्म रहित सिद्ध परमेष्ठी देव कहाते हैं। तथा ऐसे ही देवके द्वारा प्रतिपादित अनेकांत स्वरूप धर्म तथा द्वादशांगरूप शास्त्र तथा परम जितेन्द्रिय अट्ठाईस मूलगुण और ८४००००० उत्तर गुणोंके धारी आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु गुरु इन तीनोंका भी सम्यक् श्रद्धान करना चाहिये।

स्वप्नमें भी इनके सिवाय अन्य भेषी कुलिंगीदेव, गुरु व जैनाभास मत तथा जैनेतर मत स्वरूप धर्मको कदापि अंगीकार नहीं करना चाहिये। ये ही पंचपरमेष्ठी (अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु) भव्य जीवोंको भवसागरसे पार करनेमें समर्थ कारणस्वरूप होते हैं। इसलिये हे वत्स! तुम मन, वचन, कायसे इन्हींका आराधन करो। जिससे उभय लोकमें सुख पाओ। ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन पूर्वक सप्त व्यसनोंका त्याग करो तथा पंच अणुव्रत और सप्त शीलका पालन करो।

हे वत्स! वे इन सब व्रतोंका धारण करनेका मुख्य तात्पर्य विषय और कषायोंको कम करना अथवा सर्वथा अभाव करना है। क्योंकि आत्माका अहित करनेवाले विषय कषाय ही हैं। "आतमके अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।" सो जो भव्य जीव इन मूल बातोंपर

दृष्टि रखकर व्रताचरण करते हैं, उन्हींका व्रत करना सफल है, क्योंकि जो जड़को काटकर वृक्ष व फलोंकी रक्षा करना चाहता है वह मूर्ख है। 'मूलो नास्ति कुतः शाखा।' यथार्थमें मोहसे उत्पन्न ये राग द्वेषादि कषाय ही आत्माके परम शत्रु हैं इन्हींके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव और बन्ध होता है।

जैसे२ जीव कर्म करता है वैसे ही शुभाशुभरूप होकर पुद्गलकी कर्मवर्गणायें आत्माकी ओर आती हैं जिससे तीव्र व मन्द कषाय भावोंके अनुसार तीव्र व मन्द रूप स्थिति व अनुभागको लिए हुवे कर्मोंका बन्ध होता है। इसी प्रकार यह जीव अनादिकालसे कर्म बन्ध करता हुआ, संसारमें जन्ममरणादि अनेक दुःखोंको भोगता है। यह संसारी मोही-जीव पुद्गलकर्मोंके वश हो जानेके कारण शुद्ध आत्माके स्व-रूपको भूला हुआ चतुर्गतिमें ८४००००० योनियोंमें १९९॥ कोटि कुलरूप स्वांग धरकर विषयवासनाओंमें ही सुख मान रहा है।

इसलिये धर्मके स्वरूपको जानकर श्रद्धापूर्वक जो पुरुष विषय और कषायोंके दमन करनेवाले दो प्रकार (सागार और अनगार) धर्मको धारण करते हैं वे स्वर्गादिके सुखोंको भोगकर अनुक्रमसे सच्चे (मोक्षके) सुखको प्राप्त होते हैं। परन्तु जो लोग धर्मका स्वरूप समझे बिना केवल बाह्य चारित्रमें ही रंजित हो जाते हैं वे संसारके पात्र ही बने रहते हैं। उनकी यह सब क्रिया कायक्लेश मात्र ही रहती है। इसीसे जिनदेवने प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही चारित्रको सम्यक्चारित्र कहा है। इसलिये यथाशक्ति चारित्र भी धारण करना चाहिये।

गुरुका यह उपदेश उन दोनोंको अमृतके समान हितकारी प्रतीत हुआ। सो उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना। पश्चात् राजा

कनककेतुने विनयपूर्वक पूछा—"हे प्रभो ! यह पुरुष कौन है ? और किस कारण यहां आया है ?" तब श्रीगुरुने कहा—

यह अंगदेश चम्पापुर नगरके राजा अरिदमन तथा उसकी रानी कुन्दप्रभाका पुत्र श्रीपाल है। जब इसका पिता कालवश हो गया, तब यह राजा हुआ परन्तु इसको पूर्व-संचित अशुभ कर्मोके योगसे सातसौ सखों सहित कोढ रोग हो गया, जिससे प्रजाको भी दुर्गंधिसे बहुत पीडा होने लगी। सो जब प्रजाकी पीडाका समाचार इसके कान तक पहुँचा, तब इस दयालु प्रजावत्सल धीरवीरने अपने चाचा वीर-दमनको राज्य देकर सब सखों समेत वनका मार्ग लिया, और फिरते२ उज्जैनी नगरी मालवदेशमें आया। वहां नगरके बाहिर उद्यानमें डेरा किया। सो वहांके राजा प्रजापालने इसके पूर्व पुण्यके उदयसे इससे संतुष्ट हो, अपनी पुत्री मैनाकुमारीके भाग्यकी परीक्षा करनेके लिये वह गुण-रूपवती सुशील कन्या इससे ब्याह दी ।

वह कन्या सच्ची सती और धर्मात्मा थी, इसलिए उस विदुषी कन्याने अपने पिताके द्वारा पसंद किये हुवे इस कोढी वरको सहर्ष स्वीकार कर लिया, और अपने शुद्ध चित्तसे पतिसेवा तथा उपचार कर स्वकर्तव्यका पालन किया, तथा अष्टान्हिका (सिद्धचक्र) व्रत भी किया जिसके प्रभावसे इसको शीघ्र आराम हो गया। अर्थात् हे भव्य ! वह नित्य श्री जिनदेवकी पूजनाभिषेक करके गंधोदक लाती, और सातसौ वीरों सहित इस पर छिडकती थी, और निरन्तर सिद्धचक्रका आराधन करती हुई शीलव्रतकी भावना भाती थी, जिससे इसका कोढ़ थोडे ही दिनमें चला गया। और इसका शरीर जैसा तुम देख रहे हो सुन्दर स्वरूपवान हो गया।

पश्चात् कुछ दिनोंके पीछे इसे विचार हुआ कि मैं राज्यजंवाई कहलाता हूं, और मेरे पिता, कुल व देशका कोई नाम तक भी नहीं लेता हैं यह बडी लज्जाकी बात है। इसलिए पिछली रात्रिको घरसे निकलकर फिरते२ एक वनमें आया। वहांपर एक विद्याधरको विद्या साधते और सिद्ध न होते देखकर इसने उसे सिद्ध करके सौंप दी, जिससे उसने प्रसन्न होकर दो अन्य विद्यायें इसे भेंट की।

फिर वहांसे आगे चलकर वह वत्स नगरमें आया। सो वहांपर धवलसेठके पांचसौ जहाज समुद्रमें अटक रहे थे, उनको ढकेलकर चलाया। तब उसने अपने लाभका दशमां भाग इसे देना स्वीकार कर अपने साथ ही ले लिया। पश्चात् रास्तेमें आते हुए डाकुओंने जहाज घेर लिये, और सेठको बांधकर ले चले। तब इस वीरने निज भुजबलसे उन सबको बांधकर सेठको छुडा लिया, और फिर उन सब डाकुओंको छोड़कर उनका बहुत सन्मान किया, जिससे उन्होंने प्रसन्न होकर अमूल्य रत्नोंसे भरे हुए सात जहाज भेंट किए। इस प्रकार वहांसे यह महापुरुष उस धवलसेठके साथ चलकर यहां आया है, और जिनदर्शनके निमित्त ये वज्रमय कपाट उघाड़े हैं।

इस प्रकार श्रीपालका चरित्र सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और मुनिवरोंको नमस्कार कर श्रीपालको साथ ले अपने महलको आया, और शुभ घड़ी मूहूर्त विचारकर अपनी पुत्री रयनमंजूषाको व्याह इनके साथ कर दिया। इसप्रकार श्रीपाल रयनमंजूषाको व्याह कर वहां सुखसे काल व्यतीत करने लगे और धवलसेठ भी यथायोग्य वस्तु बेचने और खरीदने रूप अपना व्यापार करने लगा।

श्रीपालजीकी विदा

इस प्रकार सुखपूर्वक समय व्यतीत होते हुए कुछ भी मालूम नहीं होता था । सो इसप्रकार जब बहुत समय बीत गया, और धवलसेठ भी अपना व्यापार कार्य कर चुके, तब एक दिन श्रीपालजीने [illegible] राजाके पास आये, और विनती करके बोले– 'हे नरनायक ! प्रजावत्सल स्वामिन् ! हमको आपके प्रसादसे बहुत आनंद रहा और बहुत सुख भोगा । अब आपकी आज्ञा हो तो हम लोग देशांतरको प्रसाद प्रस्थान करें ।'

राजाको यद्यपि ये वियोगसूचक वचन अच्छे नहीं लगे, क्योंकि संसारमें ऐसा कौन कठोरचित है, जो अपने स्वजनोंको अलग करना चाहे, परन्तु यह सोचकर कि यदि हठकर रक्खेंगे तो कदाचित् इनको दुःख होगा और परदेशीकी प्रीति भी तो क्षणिक ही होती है इसलिये जैसी इनकी इच्छा हो वैसा ही करना उचित है । इससे वे उदास होकर बोले—

"आप लोगोंकी जैसी इच्छा हो और जिस तरह आपको हर्ष हो, सो ही हमको स्वीकार है ।" ठीक है, सज्जन पुरुषोंकी यही रीति होती है कि वे परके दुःखमें दुःखी और परके सुखमें सुखी होते हैं, अर्थात् वे किसीकी उचित कामनाका विघात नहीं करते । फिर तो ये राजाके स्वजन ही थे इसलिए राजाने इनका वचन स्वीकार करके जानेके लिए आज्ञा प्रदान की और बहुत धन, धान्य, दासी, दास, हिरण्य, सुवर्ण आदि अमूल्य रत्न भेंट देकर निज पुत्री रयनमंजूषाको भी साथमें विदा कर दिया ।

चलते समय राजा बहुत दूर तक पहुँचानेको गये, और निज पुत्रीको इस प्रकार शिक्षा देने लगे–ए पुत्री ! तुम अपने कुलके आचारको नहीं छोड़ना कि जिससे मेरी हंसी हो। तुमसे जो बडे हों उनको भूल करके भी कषाय युक्त होकर सन्मुख उत्तर नहीं देना, और सदा उनकी आज्ञा शिरोधार्य करना। छोटोंपर करुणा और प्रेमभाव रखना, दीनों पर दया करना, स्वप्नमें भी देव विरोध नहीं करना। तुम अपनेसे बडे पुरुषोंको मुझ (पिता) समान, समवयस्कको भाईके समान और छोटोंको पुत्रवत् समझना। मन, वचन, कायसे पतिकी सेवा करना, और उससे कभी भी विमुख नहीं होना। कैसा भी समय क्यों न आवे, परन्तु मिथ्यादेव, गुरु और धर्मको सेवन नहीं करना, निरन्तर पंचपरमेष्ठीका आराधन किया करना। सच्चे देव–गुरु धर्मको कभी नहीं भूलना। और हे पुत्री ! नरनारियोंका जो प्रधान भूषण शीलव्रत हैं सो मन, वचन, कायसे भले प्रकार पालन करना।"

इस प्रकार पुत्रीको शिक्षा देकर राजा श्रीपालके निकट आये और मधुर शब्दोंसे कहने लगे—कुमार ! मुझसे आपकी कुछ भी सेवा सुश्रुषा नहीं हो सकी सो क्षमा कीजिये, और यह दासी आपकी दी हैं सो इससे भलेप्रकार सेवा कराईये। मैं आपको कुछ भी देनेको समर्थ नहीं हूं। केवल यह गुण, बुद्धिहीन, एक कुरुप कन्यारूपी लघु भेंट दी है। यही मेरी दीनताकी निशानी हैं। इसके सिवाय मैं आपका किसी प्रकार भी सत्कार नहीं कर सका हूँ सो क्षमा प्रदान कीजिये।

तब श्रीपालजी बोले–"हे राजन् ! आपने जो स्त्रीरत्न प्रदान किया हैं वही सब कुछ हैं। इससे और अधिक सम्पत्ति व सन्मान संसारमें हो ही क्या सकता है ? मुझे तो आपके

प्रसादसे अर्थ और काम दोनोंकी प्राप्ति हुई है, इसलिए आपका मुझपर बहुत उपकार है। मैं आपकी बड़ाई कहांतक करूं ?" ऐसे परस्पर सुश्रुषाके वचन कहे। पश्चात् राजा बोले— हे कुमार! यद्यपि जी नहीं चाहता है कि आपको मै यहांसे विदा होते हुए देखूं, परन्तु रोकना भी अनुचित समझता हूं क्योंकि इससे कदाचित् आपके चित्तको उद्वेग उत्पन्न हो और प्रस्थानके समय अपशुकन तथा यात्रामें विघ्न समझा जाय, इसलिए मैं आपसे केवल यह वचन कहना चाहता हूं—

साठ पाव सौ आगरे, सेर जास चालीस।
ता बिच मुझको राखियों, यह चाहत बखशीस॥

अर्थात्–मुझे 'मन' में रखिये, भूलिये नहीं। तथा—

चक्रवर्तके तट रहे, चार अक्षरके माह।
पहिलो अक्षर छोडकर, सो दीजो मुह आह॥

अर्थात्–'दर्शन' भी देते रहियें। और—

मुह अवगुण लखियो नहीं, लखियो निजकुल रीति।
ऐसी सदा निवाहियो, मासा घटे न प्रीति॥

अर्थात्–मेरे गुण अवगुणोंको कुछ भी न विचारकर केवल अपने कुलकी रीतिको ही देखिये, और ऐसा निर्वाह कीजिये जिससे किंचित् मात्र भी प्रीति कम न होने पावे। तब श्रीपालजीने कहा—

कहन सुननकी बात नहिं, लिखो पढ़ी नहिं जात।
अपने मन सम जानियो, हमरे मनकी बात॥

अर्थात्– हे राजन्! जितना प्रेम आपका मुझपर रहेगा, मेरी ओरसे भी उससे कम कभी नहीं हो सकता। देखिये—

सिन्धुपार अण्डा धरै, भ्रमै दिशान्तर जाय।
टटहरी पक्षी कबहुँ, अण्डा नहीं भुलाय॥

अर्थात्–टटीहरी पक्षी समुद्रके किनारे अंडे रखकर दिशान्तरमें चले जाते हैं, परन्तु अपना अण्डा नहीं भूलते हैं। उसी प्रकार मैं आपको भूल नहीं सकता। क्योंकि—

यद्यपि चन्द्र आकाशमें, रहै पद्मिनी ताल।
तौ भी इतनी दूरसे, विकसावत रख ख्याल॥

अर्थात्–दूर चले जानेसे भी सज्जनोंकी प्रीति कम नहीं हो सकती है। जैसे चन्द्रमा आकाशमें रहते हुए भी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करता रहता है। और—

दुर्जन सेवा कीजिये, रखिये अपने पास।
तौहू होत न रंच सुख, ज्यों जल कमल निवास॥

अर्थात् दुर्जनकी नित्य सेवा भी कीजिये और सदा पास रखिये तो भी प्रीति नहीं होती। जैसे जलमें रहकर भी कमल उससे नहीं मिलता है। इसलिए हे राजन्!—

हम पक्षी तुम कमल दल, सदा रहो भरपूर।
मुझको कबहु न भूलियो, क्या नीरे क्या दूर॥ इत्यादि।

इस प्रकार श्वसुर जंवाईका परस्पर प्रेमालाप हुआ और पश्चात् श्रीपालजीने रयनमंजूषाको साथ लेकर हँसद्वीपसे प्रस्थान किया।

समुद्र-पतन

श्रीपाल रयनमंजूषाको लेकर जब धवलसेठके साथ जल-यात्राको निकले, तब हंसद्वीपके लोगोंको, इनके वियोगसे बहुत दुःख हुआ, परन्तु वे विचारे कर ही क्या सकते थे ?

परदेशीकी प्रीति त्यों, ज्यों वालूको भीत ।
ये नहिं टिके बहुत दिवस, निश्चय समझो मीत ।।

श्रीपालको श्वसुरके छोड़नेका तथा रयनमंजूषाको भी माता-पिताको छोड़नेका उतना ही रंज हुआ, जितना कि उनको अपनी पुत्री और जंवाईके छोड़नेमें हुआ था, परन्तु ज्यों २ दूर निकलते गये, और दिन भी अधिक २ होते गये, त्यों २ परस्परकी याद भूलनेसे दुःख भी कम होता गया। ठीक है—

नयन उघारें सब लखें, नयन झपें कछु नांहि ।
नयन बिछोही होते हो, सुख दुख कछु न रहांहि ।।

वे दम्पति सुखपूर्वक काल व्यतीत करते और सर्व संघके मनोंको रंजायमान करते हुए चले जा रहे थे कि एक दिन विनोदार्थ श्रीपालजीने रयनमंजूषासे कहा—हे प्रिये ! देखो, तुम्हारे पिताने विना विचारे और विना कुछ पूछे, अर्थात् मेरा कुल आदि जाने विना ही मुझ परदेशीके साथ तुम्हारा ब्याह कर दिया, सो यह बात उचित नहीं की ।

रयनमंजूषा पतिके ये वचन सुनकर एकदम सहम गई, मानों पद्मिनी चन्द्रके अस्त होते ही मुरझा गई हो । यह नीची दृष्टि कर बड़े विचारमें पड गई कि देव ! यह क्या चरित्र है ? यथार्थमें क्या यह बात ऐसी ही है ? कुछ समझमें नहीं आता । जो यह बात सत्य है तो पिताने बडी भूल

को। चाहे जो हो, कुलीन कन्या अकुलीनसे प्रसंग कभी नहीं कर सकती है । क्योंकि कहा है—

पहुप गुच्छ शिरपर रहे, या सूखे वन मांह ।
तैसे कुलवंतन् सुता, अकुलीन घर नहि जांह ॥

देव ! तेरी गति विचित्र । तू क्या २ खेल दिखाता है । इत्यादि विचारोंमें मग्न हो गई और मुंहसे कुछ भी शब्द न निकला । तब श्रीपालने अपनी प्रियाको इस तरह चिंतित देखकर कहा—

प्रिये ! सन्देह छोडो । मैंने यह वचन केवल तुम्हारी परीक्षा करनेके लिए ही कहे थे । सुनो, मेरा चरित्र इस प्रकार है । ऐसा कहकर आद्योपांत कुछ चरित्र कह सुनाया । तब रयनमंजूषाको सुनकर सन्तोष हुआ । और उन दोनोंका प्रेम पहिलेसे भी अधिक बढ़ गया । जहाजोंके सभी स्त्री पुरुषोंमें इन दोनोंके पुण्यकी महिमा ही गाई जाती थी ।

ये दोनों सबको दर्शनीय हो रहे थे, परन्तु दिनके पीछे रात्रि और रात्रिके पीछे दिन होता है । ठीक इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मोंका चक्र भी चलता रहता है । कर्मको उन दोनोंका आनन्द वैभव अच्छा नहीं लगा । और उसने बीच-हीमें बाधा डाल दी, अर्थात् वह कृतघ्नी धवलसेठ जो इनको धर्मसुत बना कर और अपने लाभका दशवां भाग देनेका वादा करके साथ लाया था, सो रयनमंजूषाके अनुपम रूप और सौन्दर्यको देखकर उस पर मोहित हो गया, और निरंतर इसी चितामें उसका शरीर क्षीण होने लगा ।

एक दिन वह दुष्टमति उसे देखकर मूर्छित हो गिर पडा, जिससे सब जहाजोंमें कोलाहल मच गया ! तथा श्रीपालजी भी शीघ्र ही वहां आये । उन्होंने सेठको तुरंत

गोदमें उठा लिया । शीतोपचार कर जैसे तैसे मूर्छा दूर की, तो भी उसे अत्यन्त वेदनासे व्याकुल पाया । तब श्रीपालने मधुर शब्दोंमें पूछा—हे तात ! आपको क्या वेदना है ? कृपाकर कहो । तब दुष्टने बात बनाकर कहा—हे धीर पुरुष ! मुझे वायुका राग है । सो कभी २ उठकर मुझे पीडा देता है । और कोई विशेष कारण नहीं है । साधारण औषधोपचारसे ठीक हो जायगा । तब श्रीपाल उसे धैर्य देकर और अंगरक्षकोंको ताकीद करके अपने मुकाम पर चले गये । पश्चात् मंत्रियोंने पूछा—

हे सेठ ! कृपाकर कहो कि यह रोग कैसे मिटे, और क्या उपाय किया जाय ? तब सेठ निर्लज्ज होकर बोला—मंत्रियो ! मुझे और कोई रोग नहीं है । केवल कामविरहकी पीड़ा है, सो यदि मेरे मनको चुरानेवाली वह कोमलांगी मृगनयनी रयनमंजूषा नहीं मिलेगी, तो मेरा जीना कष्ट-साध्य होगा ।

मंत्रियोंको सेठके ऐसे वचन घृणित शब्द सुनकर बहुत दुःख हुआ । वे विचारने लगे कि सेठकी बुद्धि नष्ट हो गई है । इस कुबुद्धिका फल इसको और समस्त संघको भयकारी प्रतीत होता है । यह सोचकर उन्होंने नाना प्रकारकी युक्तियों द्वारा सेठको समझाया । परन्तु उस दुष्टने एक भी न मानी । वह निरन्तर वही शब्द कहता गया । निदान लाचार होकर मंत्रियोंने कहा कि सेठ ! यदि आप अपना हठ न छोड़ेंगे, और इस घृणित कार्यका उद्यम करेंगे तो स्मरण रखिये, परिणाम अच्छा न होगा ।

क्योंकि रावण जैसा त्रिखण्डी प्रतिनारायण और कीचक आदिकी कथाएं शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है । परस्त्री सर्पिणीसे भी

अधिक विछोली होती है। देखो इसका हठ छोड़ो ! हम लोग आज्ञाकारी हैं, जो आज्ञा होगी सो करेंगे, परन्तु स्वामीकी हानि और लाभकी सूचना कर देना यह हमारा धर्म है। आप हम लोगोंकी बात पीछे याद करेंगे। इत्यादि बहुत कुछ समझाया, परन्तु जब देखा कि वह मानता ही नहीं है तब वे लाचार होकर बोले अदृष्ट प्रबल है।

सेठजी ! इसका केवल एक ही उपाय है कि मरजियाको बुलाकर साथ लिया जाये, कि जिससे यह एकाएक कोलाहल मचा दे कि 'आगे न मालूम कोई जानवर है, या चोर है, या कुछ ऐसा ही दैवी चरित्र है दौड़ो, उठो, सावधान होओ' सो इस आवाजको सुनकर जब श्रीपाल मस्तूलपर चढ़कर देखने लगे तब मस्तूल काट दिया जाय। इस तरह वे समुद्रमें गिर जावेंगे और आपका मनवांछित कार्य सिद्ध हो जायगा। अन्यथा उसके रहते उसकी प्रियाका पाना मानों अग्निमेंसे बर्फ निकालना है।

मंत्रियोंका यह विचार उस पापीको अच्छा मालूम हुआ। और इसलिए उसने उसी जगह मरजियाको बुलाकर बहुत प्रकार प्रलोभन देकर साथ लिया। ठीक है, पुरुष स्वार्थवश आनेवाली आपत्तियोंका विचार नहीं करते। निदान एक दिन अवसर पाकर मरजियाने एकाएक चिल्लाना आरम्भ किया कि—वीरो! सावधान होओ! सामने भयके चिह्न दिखाई दे रहे हैं। न मालूम कोई बड़ा जल जन्तु है, या चोरदल है, अथवा ऐसा ही और कोई दैवी चरित्र है, तूफान है, या भंवर है, कुछ समझमें नहीं आता।

इस प्रकार चिल्लानेसे कोलाहल मच गया। सब लोग कहां कहां क्या है? क्या है! करके चिल्लाने और पूछने-

लगे। इतने हीमें श्रीपालजीको खबर लगी, सो वे तुरन्त ही उठ खड़े हुए और कहने लगे–"अलग होओ! यह क्या है? क्या है? कहनेका समय नहीं। चलकर देखना और उसका उपाय करना ही चाहिये। ऐसा कहकर वे आगे बढ़कर शीघ्र ही मस्तूलपर जा खड़े हुए और बड़ी सावधानीसे चारों ओर देखने लगे, परन्तु कहीं भी कुछ दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इतनेमें नीचेसे दुष्टोंने मस्तूल काट दिया, जिससे वे बातकी बातमें समुद्रमें जा पड़े, और लहरोंमें ऊंचे नीचे होने लगे। यहां जहाजोंमें कोलाहल मच गया, कि मस्तूल टूट जानेसे श्रीपालकुमार समुद्रमें गिर पड़े है। और न जाने कहां रह गये? उनका पता नहीं लगता, जीवित है या मर गये? इस प्रकार सबने शोक मनाया, और धवलसेठने भी बनावटी शोक करना आरम्भ कर दिया।

वह कहने लगा–"हाय कोटीभट्ट श्रीपाल! तुम कहां चले गये? तुम्हारे बिना यह यात्रा कैसे सफल होगी? हाय! इन भारी जहाजोंको निज भुजबलसे चलानेवाले, लक्ष चोरोंको बांधकर मुझे उनके बन्धनसे छुड़ानेवाले, हाय! कहां चले गये। हे कुमार! इस अल्प वयमें असीम पराक्रम दिखाकर क्यों चले गये? तुम बिना, विपत्तिमें कौन रक्षा करेगा? हा दैव! तूने हमको अनमोल रत्न दिखाकर क्यों छीन लिया? इत्यादि उसी मनसे बनावटी रोना रोने लगा। अन्तरङ्गमें तो वह हर्षके मारे फूलकर कुप्पा हो रहा था परन्तु सबमें और बहुतोंको तो सचमुच ही बहुत दुःख हुआ। सो ठीक है। कहा भी है—

"जिसका घो गिर जाय, सो ही लूखा जाय।"

सो औरोंको सच्चा दुःख हो या झूठा, परन्तु धवलसेठको बनावटी शोक था परन्तु औरोंका सच्चा था, क्योंकि उनका

तो श्रीपालसे बिगाड़ ही गया था, वह तो धवल जैसे कुष्ट-हृदय स्वार्थियोंका कांटा ही थे सो निकल गये । अस्तु ।

किसीको कुछ भी हो, परन्तु स्त्रियोंको तो शरण-आधार पतिके बिना संसार अन्धकारमय ही हो जाता है, पतिके बिना सुन्दर सुकोमल सेज भी विषम कंटक समान चुभती है । सुन्दर २ वस्त्र और आभूषण कठिन बन्धनोंसे भी अधिक दुःख देनेवाले प्रतीत होते हैं । संगीत आदि मधुर स्वर सिंहकी भयानक गर्जनासे भी भयानक मालूम होते हैं, षट्रसपूरित सुगंधित मिष्ट भोजन हलाहल विष तुल्य मालूम पड़ता है । यथार्थमें पतिविहीन स्त्रियोंका जीवन पृथ्वीपर अर्धदग्ध जेवरीके समान है । हाय ! जिस समय उस सुकुमार अबला स्वजनमुखसे यह सुना, कि स्वामी समुद्रमें गिर गये हैं, उसी समय वह बेसुध हो मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी ।

मालुम होता था कि कदाचित् उसके प्राणपंखेरू ही इन विनाशीक शरीररूपी घोंसलेसे विदा लेकर सदाके लिये चले गये हैं, परन्तु नहीं अभी आयु कर्म निःशेष नहीं हुआ था ! और कर्मोको कुछ अपना और खेल भी दिखाना था इसीसे वह जीवित रह गई ।

सज्जनोंने शीतोपचारकर मूर्छा दूर की तो सचेत होते ही स्वामिन् ! इस अबलाको छोड़कर तुम कहां चले गये ? तुम्हारे बिना यह जीवनयात्रा कैसे पूरी होगी ? हे नाथ ! अब यह अबला आपके दर्शनकी प्यासी पपीहाकी नाईं व्याकुल हो रही है । हे कोटीभट्ट ! हे कामदेव ! हे कुल-कमल दिवाकर ! तुम्हारे बिना मुझे अब एक२ पल भी चैन नहीं पड़ती है । हे जीवदया-प्रतिपालक प्राणेश्वर ! दासीपर दयादृष्टि करो । मेरा चित्त अधीर हो रहा है । हे नाथ !

सिद्धचक्रका वर्णन कौन करेगा ?

हां निर्दयी कर्म ! तूने कुछ भी विचार न किया ! मुझ निरपराधिनीको क्यों ऐसा दुःखद दुःख दिया ? हाय ! यह आयु स्वामीको गोदमें ही पूरी हो गई होती, तो ठीक था अब यह संसार भयानक वन सरीखा दिखता है। हे त्रिलोकीनाथ ! सर्वज्ञ प्रभो ! हे वीतराग स्वामिन् ! मेरे पतिकी सहायता कीजिये ! हे सिद्ध भगवान् ! आपके आराधन मात्रसे वज्रमयी किवाड खुल गये थे, सो इस संकटमें भी स्वामीकी रक्षा कीजिये ! स्वामीके निमित्त ये प्राण कुछ भी वस्तु नहीं है । हाय ! मुझे नहीं मालूम कि मैंने ऐसे कौन कर्म किए थे कि जिससे स्वामीका वियोग हुआ ? क्या मैंने पूर्व जन्ममें परपुरुषकी इच्छा की थी ? या पति-आज्ञा भंग की थी ? या किसीका व्रत भंग करवाया था ? जिनधर्मकी निन्दा की थी ? या गुरुकी अविनय की थी ? या किसीको पतिवियोग कराया था ? या हिंसामय धर्मका सेवन किया था ? या कुगुरु या कुदेवकी भक्ति की थी ? या अपना व्रत भंग किया था ? या असत्य भाषण किया था ? या कन्दमूल आदि अभक्ष्य भक्षण किया था ? हाय ! कौनसा अशुभ उदय आया कि जिससे प्राण प्यारे पतिका वियोग हुआ ? हे स्वामिन् ! आओ, दासीकी खबर लो ।

देखो, मैनासुन्दरीसे आपका वायदा था कि बारह वर्षमें आऊंगा, सो क्या भूल गये ? नाथ ! मुझपर नहीं तो उन्हींपर दया करो ! क्या करूं, और किस तरह धैर्य धरूं ? अरे, कोई भी मेरे प्राणप्यारे भर्तारकी कुशल मुझे जाकर सुनाओ ? हे समुद्र ! तू स्वामीके बदले मुझे ही लेकर यमपुर पहुंचा देता तो ठीक था ! स्वामीके विना मेरा जीवन व्यर्थ है । मैं जाकर अब क्या करूंगी ? इच्छा होती है कि मैं

गिरकर प्राण दे दूं, परन्तु आत्मघात महापाप है। यदि मुझसे सेवामें कुछ कमी हो गई थी तो मुझे उसका दण्ड देते। अपने आपको क्यों दुःखसागरको डुबोया। अब बहुत देर हुई। प्रसन्न होओ और अबलाको जीवनदान दो, नहीं तो अब ये प्राण आपको न्योछावर होते है! अब, हे प्रभो! आपकी ही शरण है, पार कीजिये।

इस प्रकार रयनमंजूषाने घोर विलाप किया। उसका शरीर कांतिहीन मुरझाये फूल सरीखा दिखने लगा, खानपान छूट गया, शृंगार भी स्वामीके साथ समुद्रमें डूब गया। इस प्रकार उस सतीको दुःखसे विह्वल देखकर सब लोग यथायोग्य धैर्य बंधाने लगे और पापी धवलसेठ शोकाकुल होकर समझाने लगा।

हे सुन्दरी! अब शोक छोडो! होनी अमिट है। इस पर किसीका वश नहीं। संसारका सब स्वरूप ऐसा ही है। जो उपजता है वह नियमसे नाश होता हैं। अब व्यर्थ शोक करनेसे क्या हो सकता है? अब यदि तुम भी उनके लिए मर जाओ तो भी वे तुम्हें नहीं मिल सकते हैं। सांझको अनेक दिशाओंसे पक्षी आकर एक स्थानमें ठहरते हैं और भोर होते ही अपनी २ अवधि पूरी कर अपनीर दिशाको चले जाते हैं। इस पृथ्वीपर बडेर चक्रवर्ती नारायणादि हो गये परन्तु कालने सबको अपना ग्रास बना लिया, कर्मवश विपत्ति सबके उपर आती है। कर्मवश रामचंद्र लक्ष्मणका वनवास हुआ। कर्मवश सीता पतिसे दो बार विछोह हुआ। कर्मवश ही भरत चक्रवर्तीका मान भंग हुआ। कर्मवश ही आदिनाथ तीर्थंकरको छः मास तक भोजनका अंतराय हुआ। तात्पर्य-कर्मने जगजीवनको जीत लिया है इसलिए शोक छोड़ो। हम लोगोंको भी असीम दुःख हुआ है, परन्तु किससे कहें और क्या करें? कुछ उपाय नहीं है।

इस प्रकार सबने समझा कर रयनमंजूषाको धैर्य दिया। तब वह भी संसारके स्वरूपका विचार कर किसी प्रकार धैर्य धारण कर सोचने लगी यथार्थमें शोक करनेसे असाता वेदनी आदि अशुभ कर्मोंका बंध होता है। सो यदि इतने ही समयमें जितनेमें शोक कर रही हूं श्री पंचपरमेष्ठीका आराधन करूंगी तो अशुभ कर्मकी निर्जरा होगी और यह भी आशा है कि उससे कदाचित् प्राणपतिका भी मिलाप हो जाय। क्योंकि सीताको इसी परमेष्ठी मन्त्रकी आराधनासे पतिका मिलाप और अग्निका जल हो गया था।

अंजनाको इसी मंत्रके प्रभावसे उसके प्राणप्रिय पतिको भेंट हुई थी। और तो क्या पशु और पक्षियोंको भी इसी मन्त्रके प्रभावसे शुभ गति हो गई है, सो मेरे भी इस अशुभ कर्मका अन्त इसीकी आराधनासे आवेगा। और कदाचित् इसी मंत्रकी आराधना करते हुए मरण भी हो गया तो भी इस पर्यायसे छुटकारा मिलते ही सद्गति प्राप्त हो जायगी।

वास्तवमें यह महामंत्र तीन लोकमें अपराजित है अनादि-निधन है, मंगलरूप है, लोकमें उत्तम है और शरणाधार है। अब मुझे-इसीका शरण लेना योग्य है। बस, वह सती इसी विचारमें मग्न हो गई। अर्थात् मनमें पंचपरमेष्ठी मन्त्रकी आराधना करने लगी। उसे खानपानकी भी सुध न रही। दो चार दिन यों ही बीत गये। स्नान, विलेपन और वस्त्राभूषणका ध्यान ही किसे था? वह किसीसे बात भी नहीं करती थी, न किसीकी ओर देखती थी। नींद, भूख प्यास, तो उसके पास ही नहीं रहे थे। उसको मात्र पंचपरमेष्ठीका स्मरण और पतिका ध्यान था।

वह पतिव्रता उन जहाजोंमें इस प्रकार रहती थी जैसे जलमें कमल भिन्न रहता है। वह परम वियोगिनी इस प्रकार काल व्यतीत करने लगी।

धवलसेठका रयनमंजूषाको बहकाना

धवलसेठके ये दिन बड़ी कठिनतासे जा रहे थे। इस-लिए उसने शीघ्र ही एक दूतीको बुलाकर रयनमंजूषाको फुसलानेके लिए भेजा। सो ठीक है—

कामलुब्धे कुतो लज्जा, अर्थहीने कुतः क्रिया।
सुरापाने कुतः शौचं, मांसाहारे कुतो दया॥

अर्थात्—कामीको लज्जा कहां? और दरिद्रके क्रिया कहां? मद्यपायीके पवित्रता कहां? और मांसाहारीके दया कहां, सो पापिनी दूती व्यभिचारकी खानि लोभके वश होकर शीघ्र ही रयनमंजूषाके पास गई और यहां वहांकी बातें बनाकर कहने लगी—

"हे पुत्री! धैर्य रक्खो। होना था सो हुआ, गई बातका बिचार ही क्या करना है! हां यथार्थमें तेरे दुःखका ठिकाना नहीं है कि इस बालावस्थामें पतिवियोग हो गया। अब इस बातकी चिंता कहां तक करेगी? अभी तो तेरी नवीन अवस्था है, इसमें कामका जीतना बडा कठिन है। सो बेटी! तू कैसे उस कामके बाणोंको सहेगी? जिस कामके वशीभूत होकर साधु और साध्वीने रुद्र व नारदकी उत्पत्ति की, जिस कामसे पीडित होकर रावणने सीता हरण की, जिस कामके वशमें और तो क्या देव भी हैं, उस कामको जीतना बहुत कठिन है। और ठीक ही कहा है—

घास फूसको खात है, तिनहिं सतावे काम।
षट्रस भोजन जो करें, उनकी जाने राम॥

सो अब इस यौवनको पाकर व्यर्थ नहीं खो देना चाहिये, यौवन गया हुआ फिर नहीं मिलता है। केवल पछतावा ही हाथ रह जाता है। जिन्होंने तरुण अवस्था पाकर विषय नहीं सेया, उनका नरजन्म न पानेके बराबर है। तू अब श्रीपालका शोक छोड़कर इस परम ऐश्वर्यवान, रूपवान और धनवान सेठको ही अपना पति बना।

मरेके पीछे कोई मर नहीं जाता। मर गया तो जीका कंटक छूटा। ऐसी लाजसे क्या लाभ, जो जीवनके आनंदपर पानी डाले। और वह तो धवलसेठका नौकर था, सो जब मालिक ही मिल जाय तो नौकरकी क्या चाह करना? मुझे तेरी दशा देखकर बहुत दुःख होता है। अब तू प्रसन्न हो, और सेठको स्वीकार कर तो मैं अभी जाकर उसको भी राजी किये आती हूं।

मैं वृद्ध हुई हूं इसलिए मुझे संसारका अनुभव भलेप्रकार है। तू अभी भोलीभाली नादान लड़की है, इसलिए मेरे वचन मानकर तू मुझसे काम निता। इत्यादि अनेक प्रकारसे उस कुटिला दासीने समझाया, परन्तु जैसे काले कम्बलपर और कोई रंग नहीं चढ़ता है उसी प्रकार उस सतीके मन-पर एक बात भी न जंची, अर्थात् उस पापिनी दूतीका जादू इसपर न चला।

वह कुलवंती सती उसके ऐसे निंद्य वचन सुनकर क्रोधसे कांपने लगी, और डाटकर बोली—चुप रह, दुष्टा पापिनी !

तेरी जीभके सौ टुकडे क्यों नहीं हो जाते ? धवलसेठ तो मेरे पतिका धर्म-पिता और मेरा श्वसुर (पिताके समान) है । क्या पुत्री और पिताका संयोग होता हैं ?

पापिनी ! तूने जन्मांतरोंमें ऐसे२ नीच कर्म किये हैं जिससे रण्डा कुट्टिनी हुई हैं और न मालूम अब तेरी और क्या गति हो ? इस जन्ममें रयनमंजूषाका पति केवल श्रीपाल ही है । और पुरुष मात्र, उसको पिता व भाई तुल्य हैं । हट जा यहांसे, मुझे अपना मुंह मत दिखला नहीं तो इसका बदला पावेगी । इस प्रकार सुन्दरीने अब उसे धुड़काया तब वह अपनासा मुंह लेकर कांपती हुई पापी सेठके पास आई, और बोली—

"हे सेठ ! वह मेरे वशकी नहीं हैं मुझे तो उसने बहुत अपमान करके निकाल दिया । जो थोडी देर और ठहरती, तो न मालूम यही मेरी क्या दशा करती ? इसलिए आप जानो व आपका काम जाने । मुझसे यह काम तो नहीं हो सकता । दूती ऐसा उत्तर देकर चली गई ।

धवलसेठ रयनमंजूषाके पास और देवसे दंड

जब धवलसेठने दूतीको कृतकार्य हुआ न जाना और निराशाका उत्तर मिल गया, तब उस निर्लज्जने स्वयं रयनमंजूषाके पास उसे फुसलानेका विचार किया। ठीक है कहा है—

यः कश्चिन् मकरध्वजस्य वशगः, किं ब्रूमहे तत्कृते ।
नो लज्जा न च पौरुषं न कुलं, कुत्रास्ति पापान्विते ॥
नो धैर्यं च पितुर्गुरोश्च महिमा, कुत्रास्ति धर्मस्थितिः ।
नो मित्रं न च बांधवा न च गृहं, ह्यस्तः स्त्रियं पश्यति ॥

अर्थात्—जो पुरुष कामके वश हो रहा है, उसकी क्या कथा है। उसको न लज्जा, न बल, न कुल न धैर्य, न धर्म, न गुरु, न पिता, न मित्र, न भाई, और न घर आदि कुछ भी नहीं दिखता। केवल एक स्त्री ही स्त्री उसे दिखा करती है। और भी कहा है—

कामार्तानां कुतः पापं, पापार्थीनां कुतः सुखं ।
नास्ति तत्प्राणिनां कर्म, दुःखदं यन्न कामजम् ॥
यथा माता यथा पुत्री, यथा भगिनी च स्त्रियः ।
कामार्थी च पुमानेता, एकरूपेण पश्यति ॥

अर्थात्-कामी नरको क्या पाप नहीं लगता? और पापीको क्या सुख हो सकता है? नहीं, कभी नहीं देखो, कामी नर माता बहिन और पुत्री सबको स्त्रीके ही रूपमें देखता है। इसी प्रकार शीघ्र ही वह पापी कामांध सेठ निर्लज्ज होकर उस सतीके निकट पहुँचा। वह धर्मधुरन्धर

अबला उसे सन्मुख आते देखकर अत्यन्त ही भय और लज्जासे मुरझाये फूलकी नांई हो गई, और अपना मुंह वस्त्रसे ढांक लिया और मनमें सोचने लगी कि हा दैव! तू क्या क्या खेल दिखाता है? एक तो मेरे प्राणवल्लभ भर्तारका वियोग हुआ। दूसरे यह दुर्बुद्धि मेरा शील भंग करनेके लिए सन्मुख आ रहा हैं। हो न हो, मेरे पतिको इस पापीने ही समुद्रमें गिराया होगा।

हाय! एक दुःखका तो अन्त नहीं हुआ, और दूसरा सामने आया। क्या करूं। इस समय मेरा कौन सहायी होगा? वह दासी भी इसी पापीने भेजी होंगी। इन जहाजोंमें मेरा कोंई हितू नहीं दिखता हैं। हे जिनदेव! अब आपहीका शरण है। मुझे किसी प्रकार पार उतारिये, लज्जा रखिये, तुम अशरणके शरणाधार और निरपेक्ष बन्धु हो। इस प्रकार सोच रही थी कि वह पापी निकट आकर बैठ गया। और विषलपेटी छुरीके समान मीठे शब्दोंमें हंस हसकर कहने लगा—

'हे प्रिये रयनमंजूषे! तुम भय मत करो। सुनों, मैं तुमसे श्रीपालकी बात कहता हूं। वह दास था, उसको मैंने मोल लिया था। वह कुलहीन और वंशहीन था। बड़ा प्रपंची, झूंठा और निर्दयीचित्त था। ऐसे पुरुषका मर जाना ही अच्छा है। तुम व्यर्थ उसके लिए इतना शोक कर रही हो, अब उसका डर भी नहीं रहा है, क्योंकि उसको गिरे हुए कई दिन भी हो चुके हैं सो जलचरोंने उसके मृतक शरीर तकको खा लिया होगा। इसलिये निःशंक होओ।

जब कांटा निकल जाता हैं, तब दुःख नहीं रहता। मुझे उसके साथ तुमको रहते हुए देखकर दुःख होता था कि क्या

ऐसी कुलवान् और रूपवान् कन्या कुष्टीको सेवे। सो यह अन्याय विधि भी न देख सका, और उसने तुम्हारा पल्ला उससे छुड़ा दिया। अब तुम प्रसन्न होओ मेरी ओर देखो। तुम मेरी स्त्री बनो और मैं तुम्हारा भर्तार बनूं। मैं तुमको अपनी सब स्त्रियोंमें मुख्य बनाऊंगा, और स्वप्नमें भी तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कभी न होऊंगा। अब तुम डर मत करो। शीघ्र ही अपना हाथ मेरे गलेमें डालो, और अपने अमृतमई वचनोंसे मेरे कानों व मनको प्रफुल्लित करो चित्त तुम्हारे बिना व्याकुल हो रहा है।

हे कल्याणरूपिणी! मृगनयनी! कोमलांगी! आओ और अपने कोमल स्पर्शसे मेरा शरीर पवित्र करो। देखों, ज्यों२ घड़ी जाती हैं, त्यों२ यौवनका आनन्द कम होता जाता है। कहा भी है कि—

मनुज जनमको पाय कर, कियो न भोग विलास।
व्यर्थ गमायो जन्म तिन, कर आगाथी आश॥
खबर नहीं है पलककी, कलकी जानें कौन।
जिन छोड़े सुख हालके, उनसे मूरख कौन॥
सदा न फूलें केतकी, सदा न श्रावण होय॥
सदा न यौवन थिर रहै, सदा न जीवे कोय॥

इसलिए हे प्यारी! मुझ प्यासेकी प्यास बुझाओ। हम जानते हैं कि नारी बहुत कोमल होती हैं, पर तुमको क्यों दया नहीं आती? क्यों तरसा रही हो? तुम तो अतिचतुर व बुद्धिमती हो। तुम्हें इतना हठ करना उचित नहीं है। जो कुछ कहना हो दिल खोलकर कहो मैं सब कुछ कर सकता हूं, मेरे पास द्रव्यका भी कुछ पार नहीं है। राजाओंके यहां जो सुख नहीं, सो मेरे यहां है, मेरे ऐश्वर्यके सामने इन्द्र

भी तुच्छ है। किन्तु प्यारी ! केवल तुम्हारी प्रसन्नता की कमी है सो पूर्ण कर दो, आओ, दोनों हृदयसे मिल लेवें।" इत्यादि नाना प्रकारसे वह दुष्ट बकने लगा।

परन्तु इस समय उस सतीका दुःख नहीं जानती थी, क्योंकि शीलवती स्त्रियोंको शीलसे प्यारी वस्तु संसारमें कुछ भी नहीं है। वे शीलकी रक्षा करनेके लिए प्राणोंको भी न्योछावर कर देती हैं। इसीसे ये वचन उसको तीक्ष्ण बाणसे भी अधिक चुभ रहे थे जब उसने देखा कि यह पापी अपनी टें टें लगाये ही जा रहा है और किंचित भी लज्जा भय व संकोच नहीं करता, तब उसने नीति और धर्मसे संबोधन करनेका उद्यम किया। वह बोली—

"हे तात ! आप मेरे स्वामीके पिता और मेरे श्वसुर हो, श्वसुर और पितामें कुछ अन्तर नहीं होता। मैं आपकी पुत्री हूं। चाहे अचल सुमेरु चल जाय, पर पिता पुत्री पर कुदृष्टि नहीं कर सकता। प्रथम तो अशुभ कर्मने मेरे भर्तारका वियोग कराया और अब दूसरा उससे भी कई गुणा, दारुण दुःख यह तुम देनेको उद्यत हो रहे हो। यदि और कोई कहता तो आपसे पुकार करती, परन्तु आपकी पुकार किससे कहूं ! अपने कुल व धर्मको देखो, हाडमांस व मलमूत्रसे भरी घृणित देहको देखकर क्या प्रसन्न हो रहे हो ? चमड़ेकी चादरसे ढकी हुई है जिसमें दशों द्वारोंसे दुर्गन्ध निकलती है ऐसे घृणित देहपर क्यों मुग्ध हो रहे हो ? इसके अति-रिक्त आपके यहां देवांगनाओंके सदृश स्त्रियां हैं, मैं तो उनके सम्मुख दासीवत् हूं। बड़े कुलवानोंका धर्म है कि अपने और परके शीलकी रक्षा करें। देखो, रावण व कीचक आदि परस्त्री लम्पट मारे गये लोकमें अपयश लेकर और नर्क चले गये,

इसलिए पिताजी ! आप अपने स्थान पर जाओ, और मुझ दोनको व्यर्थ ही सताकर दुःखी मत करो। मुझ असहाय पर कृपा करो और यहांसे पधारो। परन्तु जैसे पित्तज्वर-वालेको मिठाई भी कडवी लगती है उसी तरह कामज्वर-वालेको धर्मवचन कहां रुच सकते हैं ?

वह दुष्ट बोला—"प्राणवल्लभे ! यह चतुराई रहने दो। ये सब बातें तो मैं जानता हूं। यह विचार बूढ़े पुरुषोंको जिनके शरीरमें पौरुष नहीं है, करना चाहिए। हम तुम दोनों तरुण हैं। भला, अग्निके पास घी बिना पिघले कैसे रह सकता है ? सो इस व्यर्थकी बातोंसे क्या होगा ? आओ, मिलो, नहीं तो ये प्राण तुम्हारे न्योछावर हैं। अब भी जो कृपा न करोगी, तो मेरी हत्या तुम्हारे सिर होगी। अब तुम्हारी इच्छा ! मारो चाहे बचाओ।"

ऐसा कहकर उस पापीने अपना माथा भूमिपर रख दिया। जब उस सतीने देखा कि यह दुष्ट नीतिसे नहीं मानता। और अवश्य ही बलात्कार कर मेरा शरीर स्पर्श करेगा, तब उसने क्रोधसे भयंकर रूप धारण कर कहा—"रे दुष्ट पापी निलज्ज ! तेरी जीभ क्यों गल नहीं जाती ? अरे नीच दुर्बुद्धि निशाचर ! तुझे ऐसे घृणित शब्दोंको कहते शर्म नहीं आती है ? रे धीठ अधम क्रूर ! पशुसे भी महान पशु है। तेरी क्या शक्ति है जो शील धुरंधर स्त्रीका शील-हरण कर सके ?

"यह पतिव्रता अपने प्राणोंको जाते हुए भी अपने शीलकी रक्षा करेगी। तू मेरे प्राण हरण तो कर सकता है, परन्तु मेरे शीलको नहीं बिगाड़ सकता। एक वे (श्रीपाल) ही इस

भवमें मेरे स्वामी है । और उनकी अनुपस्थितिमें संयम ही मेरा रक्षक हैं । रे निर्लज्ज ! मेरे सामनेसे हट जा, नहीं तो अब तेरी भलाई नहीं है ।"

वह पापी इससे भी नहीं डरा और आगेको बढ़ा । यह देख उस सतीको चेत न रहा । कुछ देरतक वह काठ-पुतली सी रह गई, परन्तु थोड़ी देरमें पुनः जोरसे पुकारने लगी-हे दीनबन्धो ! दयासागर प्रभो ! मेरी रक्षा करो !

शिवनारी भर्तार प्रभु, तुम लग मेरी दौर ।
जैसे काग जहाजका, सूझत और न ठौर ॥
दीनबन्धु करुणानिधि, धन्य त्रिलोकीनाथ ।
शरणागत पाले घने, कीन्हें अनाथ सनाथ ॥
सीता, द्रौपदि, अंजनी, मनोरमादिक नार ।
विपति समय सुमरी तुमहि, लीनो तिनहि उबार ॥
अबकी वार पुकार मुझे सुन लीजे महाराज ।
ढील न कीजे क्षणक हूँ, राखो मेरी लाज ॥
धवलसेठ हो कामवश, लाज दई छुटकाय ।
आयौ शील बिगाड़ने, यहां नहिं कोई सहाय ॥
शील नसैं जो आज मुझ, तो मैं त्यागूं प्राण ।
यामें शंक न रच हूँ, यही हमारी आन ॥ इत्यादि॥

इस प्रकार वह भगवानकी स्तुति करने लगी । अहा ! जिसका कोई सहायक न हो, और वह सच्चा शीलवान्, व्रतवान्, दृढ़चारित्री हो तो उसकी रक्षा देव करते हैं । उस सतीके अखंड शीलको कौन खण्डन कर सकता था ? एक

धवला तो क्या कोट धवला भी उसका कुछ नहीं कर सकते थे । इसीलिए उसके दृढ़ शीलके प्रभावसे वहां तुरन्त ही जलदेव आकर उपस्थित हुआ और उसने धवलसेठको मुश्कें बांध लीं तथा गदासे बहुत मार लगाई । बालुरेत आंखोंमें भरके मुंह काला कर दिया, और मुंहमें मिट्टी भर दी, तथा और भी अनेक प्रकारसे निंद्य कुवचन कहे ।

तात्पर्य—उसकी बड़ी दुर्दशा की, और बहुत दण्ड दिया। सब लोग एक दूसरेका मुंह ताकने लगे, परन्तु बतावें किससे ? क्योंकि मार ही मार दिख रही थी, परन्तु मारनेवाला कोई नहीं दिखता था, अन्तमें सभी लोग यह सोचकर कि कदाचित यह दैवी चरित्र है और इस सतीके धर्मके प्रभावसे हुआ है, अतएव रयनमंजूषाके पास आये, और हाथ जोड़कर खड़े हो प्रार्थना करने लगे ।

हे कल्याणरूपिणी पतिव्रते ! धन्य है तेरे शीलके माहात्म्यको ! हम लोग तेरे गुणोंकी महिमा कहनेको असमर्थ है । तू धर्मकी धोरी और सच्ची जिनशासनकी भक्त और व्रतोंमें लवलीन है। तेरे भावको इस दुष्टने न समझकर अपनी नीचता दिखाई । अब हे पुत्री दया कर ! इस समय केवल इस पापीका ही विनाश नहीं होता है, परन्तु हम सबका भी सत्यानाश हुआ हैं । हम सब तेरे ही शरण है, हमको बचा, उन लोगोंके दीन वचनोंको सुनकर सतीको दया आ गई । इसलिए वह क्रोधको छोड़ खड़ी होकर प्रभुकी स्तुति करने लगी—

" हे जिननाथ ! धन्य हो ! जो ऐसे कठिन समयमें आपके प्रभावसे इस अबलाकी धर्मरक्षा हुई। हे प्रभो ! तुम्हारे

बसादसे जिस किसीने मेरी सहायता की हो; वह इन्हें दया करके छोड दे। यह सुनकर उस जलदेवने उसे शिक्षा देकर छोड दिया, और रयनमंजूषाको धैर्य देकर बोला—"हे पुत्री! तू चिन्ता मत कर। थोडे ही दिनमें तेरा पति तुझे मिलेगा, और वह राजाओंका राजा होगा। तेरा सन्मान भी बहुत बढ़ेगा। हम सब तेरे आसपास रहनेवाले सेवक है, तुझे कोई भी हाथ नहीं लगा सकता है।

इस तरह वह देव धवलसेठको उसके कुकर्मोंका दण्ड देकर और रयनमंजूषाको धैर्य बंधाकर अपने स्थानको गया। और सतीने अपने पतिके मिलनेका समाचार सुनकर, व शील रक्षा होनेसे प्रसन्न होकर प्रभुकी बड़ी स्तुति की, और अनशन, ऊनोदर आदि तप करके अपना काल व्यतीत करने लगी। वह पापी धवलसेठ लज्जित होकर उसके चरणोंमें मस्तक झुकाकर बोला—'हे पुत्री! अपराध क्षमा करो। मैं बडा अधम पापी हू और तुम सच्ची शीलधुरन्धर हो। तब सतीने उसको भी क्षमा किया। सत्य है—

'उत्तमे क्षणिकः कोपो, मध्यमे प्रहरद्वयं।
अधमस्य अहोरात्रि, नीचस्य मरणान्तकम्॥'

अर्थात्—उत्तम पुरुषोंका को क्षणमात्र (कार्य होने तक), मध्यम पुरुषोंका दो प्रहर (भोजन करने तक), जघन्य पुरुषोंका दिन रात और नीचोंका मरने तक तथा जन्मान्तरों तक भी रहता है।

—❦—

श्रीपालका गुणमालासे व्याह

अब इस वृत्तांतको यहां छोड़कर श्रीपालका हाल कहते हैं। वह महामति जब समुद्रमें गिरा, तब ही उसने धवल-सेठके मायाजालको समझ लिया, परन्तु उस उत्तम पुरुष बिना साक्षी या निर्णय किये बिना कभी किसीपर दोषारोपण नहीं करते. किन्तु वे अपने उपर आये उपसर्गोंको अपने पूर्व-वत् कर्मोंका फल समझकर ही समभावोंसे भोगनेका उद्यम करते है। इसलिये उक्त धीर वीर पुरुषने अपने भावोंको किंचित् भी मलीन नहीं होने दिया और पंचपरमेष्ठी मंत्रका आराधन करके समुद्रसे तिरनेका उद्यम करने लगा। ठीक है-

"जो नर निज पुरुषार्थसे, निजको करे सहाय ।
देव सहाय करै तिनहि, निश्चय जानो भाय ।"

दैवयोगसे उनको उस समुद्रकी लहरोंमें उछलता हुआ एक लकडाका तख्ता दृष्टिगत हुआ। सो उसे पकडकर वे उसीके सहारे तिरने लगे। इनको दिनरात तो समान ही था। खानापीनाके ठिकाने केवल एक जिनेन्द्रका नाम ही शरण था, और वही त्रैलोकी प्रभु उन्हें मार्ग बतानेवाला था। वह महाबली गम्भीरता और साहसमें समुद्रसे किसी प्रकार भी कम न था। सो भला समुद्रकी शक्ति कहां जो उसे डुबा दे? दूसरी बात यह थी, कि पत्थर पानी पर नहीं तिर सकता है, परन्तु यदि काठकी नावमें मनों पत्थर भर दीजिए तो भी न डूबेगा।

इसी प्रकार वह एक तो चरमशरीरी था। दूसरे जिन-धर्मरूपी नांव पर सवार था, सो भला जो नांव इस अनादि अनन्त संसारसे पार उतार सकती है, उस नावसे इतना सा समुद्र तिरना तो कुछ भी कठिन न था। कहा है —

जेल थल वन रण शत्रु ढिग, गिरि गुह कन्दर मांहि ।
चोर अग्नि और वनचरोंसे, पुण्य हि लेय बचाहि ॥

इस प्रकार महामंत्रके प्रभावसे वे तिरते२ कुम्कुमद्वीपमें जाकर किनारे लगे। सो मार्गके खेदसे व्याकुल होकर निकट ही एक वृक्षके नीचे अचेत सो गये। इतनेहीमें वहांके राजाके अनुचर वहांपर आ पहुंचे, और हर्षित हो परस्पर बतलाने लगे कि धन्य है! राजकन्याका भाग्य, कि जिसके प्रभावसे यह महापुरुष अपने शुभबलसे अथाह समुद्र पारकर यहां आ पहुंचा है। अब तो अपने हर्षका समय आ गया, यह शुभ समाचार राजाको देते ही वे हम सबको निहाल कर देवेंगे।

अहा! यह कैसा सुन्दर पुरुष है? विधाताने अंग अंगकी रचना बडी सम्हाल करके की है। यह यक्ष है कि नाग-कुमार? या इन्द्र है, कि विद्याधर? या गंधर्व है? इत्यादि परस्पर सब बातें कर ही रहे थे कि श्रीपालजीकी नींद खुल गई। वे लाल नेत्रों सहित उठकर बैठ गये और पूछने लगे—

'तुम लोग कौन हो? यहां क्यों आये? मुझसे डरते क्यों हो? और क्यों मेरी स्तुति कर रहे हो? सो निःशंक होकर कहो।" तब ये अनुचर बोले—"महाराज! इस कुंकुमपुरका राजा सत्तराज और रानी वनमाला है। जो अपनी नीति और न्यायसे सम्पूर्ण प्रजाके प्रेमपात्र हो रहे हैं। इस नगरमें कोई भी दीन दुःखी दिखाई नहीं देते। इस राजाके यहां एक रूप और गुणकी निधान, सकल कलाप्रवीण सुशीला गुणमाला नामकी कन्या है। किसी एक दिन राजाने कन्याको यौवनवती देखकर अवधिज्ञानी श्रीमुनिराजसे पूछा था कि—

"हे देव! इस कन्याका वर कौन होगा? तब श्रीगुरुने अवधिज्ञानके बलसे जानकर यह कहा था कि जो पुरुष

समुद्रको निज भुजाओंसे तिरकर यहां आवेगा, वही इसका वर होगा।" उसी दिनसे राजाने हम लोगोंको यहां पहरे पर रक्खा है। सो हमारे पुण्योदयसे आज आप पधारे हो, आपका स्वागत है! हे प्रभो! चलिए और अपनी नियोगिनीको प्रसन्नतापूर्वक विवाहिये।

इस तरह अनुनय विनयकर कितने ही अनुचर श्रीपालजीका नगरकी ओर चलनेको विनती करने लगे। और कितनोंने जाकर शीघ्र ही राजाको खबर दी! सो राजाने हर्षित होकर उन लोगोंको पारितोषिक दिया पश्चात् राजा स्वय उनकी अगवानीके लिए गये और उबटन तेल, फुलेल आदि भेजकर श्रीपालजीको स्नान कराया, और सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कराकर बडे उत्साह और गाजे-बाजेसे मंगल गान पूर्वक उनको नगरमें लाये। घरोंघर मंगल गान होने लगा। तथा राजाने शुभ मुहूर्तमें निज पुत्री गुणमालाका पाणिग्रहण श्रीपालजीसे विनायक यंत्रकी पूजा अभिषेक और हवन संस्कारादि कराकर अग्नि व पंचोंकी साक्षी पूर्वक करा दिया तथा बहुतसा दहेज नगर, ग्राम, हाथी, घोड़ेसवार, प्यादे और वस्त्राभूषण आदि देकर कहने लगे—

"हे कुमार! मैं आपकी कुछ भी सेवा करनेको समर्थ नहीं हूं। मैंने तो आपकी सेवाके लिए मात्र यह सेविका (पुत्रीको दिखाकर) दी हैं सो अर्थ और कामसे इसका पालन कीजिये और तथा मुझसे कुछ सेवामें कमी हुई हो, सो क्षमा कीजिये और सदैव मुझपर कृपादृष्टि बनाये रखिये।"

तब श्रीपालने कहा-हे राजन! मैं तो एक विदेशी पानीमें बहता हुआ निराधार, कर्मोदयसे यहां आया था! सो आपने

चया करके जो यह कन्यारत्न मुझे दिया, और सब तरहसे मेरा उपकार किया है सो मैं भूल नहीं सकता, सदैव आपकी सेवा करनेको तैयार हूं राजा इस प्रकारका उत्तर सुनकर प्रसन्न हुआ और श्रीपालजी भी वहां गुणमाला सहित सुखसे समय बिताने लगे, परन्तु जब भी कभी रयनमंजूषा व मैना-सुन्दरीकी सुध आ जाती तो चिन्तित हो जाते थे ।

एक दिन श्रीपालजी इसी विचारमें बैठे थे कि वहां गुणमाला आ गई, और बातों ही बातोंमें पूछने लगी-- प्राणनाथ ! आपका कुछ वंश जाति आदिका वर्णन तथा यहां तक पहुँचानेका कारण भी सुनना चाहती हूँ, सो कृपाकर कहो ।

यह बात सुनकर श्रीपालको हंसी आ गई, और मनमें सोचने लगे कि अपना वृत्तांत इससे कहूँ तो इसको उसका निश्चय कैसे होगा ? ऐसा चुप रहे । तब गुणमालाकी वह इच्छा और भी बढ़ गई । इसलिए वह और भी आग्रहपूर्वक पूछने लगी कि प्रभो ! बताईये तो सही, राज्य आदि विभूति क्यों छोडा ? और समुद्रमें कैसे गिरे ? और मगरमच्छादि जीवोंसे बचकर किस प्रकार यहांतक आये ? आपका चरित्र बहुत विचित्र मालूम होता है, इसीसे सुननेकी इच्छा बढ़ रही है ।

तब श्रीपालजी बोले प्रिये ! पानी मेरा पिता, कीचड़ मेरी माता, बडवानल मेरे भाई, और तरंगे मेरा परिवार है, सो उनको छोड़कर तुम्हारे पास तक मिलनेको चला आया हूँ । बस यही मेरा चरित्र है, क्योंकि इससे अधिक और जो मैं कहूँ तो बिना साक्षी यहां कौन मानेगा ? यह

सुनकर गुणमाला विस्मयमें पड़ गई और वह लज्जित हो नीचा सिर करके बैठ रही ।

निज प्रियाकी यह विचित्र दशा देख श्रीपालजी बोले—प्रिये ! यदि तुमको मेरा विश्वास हो, और सुनना चाहती हो तो सुनो ! मैं अंगदेश चंपापुरके राजा अरिदमनका पुत्र हूं। पूर्वकर्मवश रोगाक्रांत हो जानेसे अपने काकाका राज्यभार सौंपकर सातसौ सखों सहित उज्जैन आया। और वहांके राजा पहुपालकी कन्या मैनासुन्दरीसे विवाह किया । उस सतीकी पवित्र सेवा और सिद्धचक्र व्रतके प्रभावसे मेरा और सब वीरोंका वह रोग मिटा ।

वहांसे चलकर मैंने एक विद्याधरको उसकी विद्या साधकर दे दी, और उससे जलतारिणी तथा शत्रुनिवारणी दो विद्यायें भेटस्वरूप स्वीकार कर, मैं आगे चला । पश्चात् धवलसेठके पांचसौ जहाज समुद्रमें अटक रहे थे सो चलाये, तब उसने लाभका दशांश भाग वचन देकर अपने साथ चलनेको आग्रह किया सो उसके साथ चल दिया। रास्तेमें एक लक्ष चोरोंको वश किया, और उनने रत्नसहित सात जहांज भेंट किये सो लेकर हंसद्वीपमें आया ।

वहां पर जिनालयके वज्रमयी कपाट खोले और वहांके राजाकी कन्या रत्नमंजूषाको परिणकर तथा उसे साथ ले आगे चला सो कर्मयोगसे समुद्रमें गिर गया । तब पंच-परमेष्ठी मंत्रका आराधना करता हुआ जिनधर्मके प्रभावसे यहांतक आ पहुंचा हूं । हे प्रिये ! यही मेरी कथा है ।

गुणमाला स्वामीके मुखसे उनका सब वृत्तांत जानकर बहुत प्रसन्न हुई और ये (श्रीपालजी) अपनी चतुराईसे थोड़े ही समयमें राजा तथा प्रजाके प्रिय हो गये ।

कुंकुमद्वीपमें धवलसेठ

कुछ दिनों बाद धवलसेठके जहाज भी चलते२ कुंकुमद्वीपमें आये। तब वह वहां डेराकर बहुत मनुष्यों सहित अमूल्य२ वस्तुएं लेकर राजाको भेंट करनेके लिए गया। और यथा-योग्य सत्कार कर वे चीजें भेंट की। इससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भी सेठका बहुत सन्मान किया। जब इत्र, पान, इलायची वगैरह हो चुकीं तब सेठकी दृष्टि वहां पर बैठे हुए राजा श्रीपाल पर पडी। सो देखते ही वह फूलकी नांई कुम्हला गया। दीर्घ निःश्वास निकलने लगे और चिंतासे प्रस्वेद निकलने लगा। सुधि बुधि सब भूल गये परंतु यह भेद प्रकट न हो जाय इसलिए शीघ्र ही अपने आपको सम्हाल कर वह राजासे आज्ञा मांगकर अपने स्थान पर आया और तुरन्त ही मंत्रियोंको बुलाकर विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिए? क्योंकि जिसने मेरे साथ बहुत उपकार किये थे, और मैंने उस ही को समुद्रमें गिराया था, वह तो अपने बाहुबलसे तिरकर यहां आ पहुंचा है और न मालूम कैसे, राजासे उसकी पहिचान भी हो गई है।

तब तक वोर बोला "हे सेठ! पुण्यसे क्या२ नहीं होता है? वह समुद्र भी तिर आया और राजाने उसे अपनी गुण-माला कन्या भी विवाह दी है।" यह सुन सेठ और भी दुःखी हो गया। ठीक है, दुष्ट मनुष्य किसीकी बढ़ती देखकर सहन नहीं कर सकते है। तिस पर यह तो श्रीपालजीका चोर है सो चोर साहुसे सदा भयभीत होता ही है। वह मारे भय और चिंतासे विकल हो गया और भोजन पान सब भूल

लाया। मनमें सो[illegible]राजाके यहांसे अलग करा सकूं तो ही मैं बच सकूंगा अन्यथा यह अब मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा, इसलिए भाइयो! अब कुछ ऐसा ही उपाय करना चाहिये। तब मंत्री बोले—

सेठ! चिन्ता छोड़ो और उसी दयालु कुमार श्रीपालकी शरण लो तो तुमको कुछ भी कष्ट न होगा, और यह भेद भी कोई नहीं जानेगा, परन्तु यह बात सेठको अच्छी न लगी। इतनेमें उनमेंसे एक दुष्ट मंत्री बोला—सेठ! सिंहके सामने क्या मृग जाकर रक्षा पा सकता है? जिसके साथ आपने भलाईके बदले बुराई की है, सो क्या वह अवसर मिलने पर तुमको छोड़ेगा। नहीं, कभी नहीं छोड़ेगा!

इसलिये हमारी रायमें यह आता है कि भांडोंको बुलाकर उन्हें कुछ द्रव्यका लालच देकर दरबारमें भेजो, सो वे श्रीपालको देखकर बेटा, भाई, पति आदि कहकर लिपट जावें, जिससे राजा उसे भांडोंका पुत्र जानकर प्राणदण्ड दे देगा और हम सब बच जावेंगे। कारण यहां तो उसकी जान पहिचान कुछ है ही नहीं, इसलिये यह बात जम जावेगी।

सेठको यह विचार अच्छा मालूम हुआ, इसलिए उसने इसे पसन्द कर लिया, और वह उस मंत्रीकी बुद्धिकी सराहना कर कहने लगा—बस, ठीक है। अब इस काममें देरी मत करो कि जिससे शत्रुको अवसर मिल सके, नहीं तो वह न मालूम क्या कर डालेगा? यद्यपि साथवालों या अन्य मंत्रियोंने सेठको बहुत समझाया कि देखो, ऐसा काम न करो, नहीं तो पीछे बहुत पछताओगे, और जो उसकी शरण ले लोगे तो तुम्हारा बाल भी बांका न होने पावेगा। परन्तु कहा है—"जाकी विधि दारुण दुःख देई, ताकि मति पहिले हर

लेई", अर्थात् बुद्धि कर्मानुसारिणी होती है, इसलिए किसीके कहने वा समझानेसे क्या हो सकता था?

ठीक है आपत्ति आनेके पहिले ही बुद्धि नष्ट हो जाती है, धर्मसे श्रद्धा छूट जाती है, कायरता बढ़ जाती है, सत्य वचन नहीं निकलता, विषयकषायें बढ़ जाती हैं, शील, संयम, दया, सन्तोष, विवेक, साहस आदि गुण और धन आदि सब चला जाता है। सो सेठकी भी यही दशा हुई। उसने किसीका कहना न माना, और भांडोंको बुलाकर उन्हें बहुत द्रव्यका लालच देकर समझा दिया कि तुम राजसभामें जाकर अपना खेल दिखाये, बाद श्रीपालजीके गले लगकर मिलाप करने लगना, और अपना२ सम्बन्ध प्रकट करके अपने साथ घर चलनेका आग्रह करना, और राजाके कहने पूछने पर इस प्रकार कहना—

महाराज! हम जहाजमें बैठे आ रहे थे, सो तूफानसे जहाज फट गया, और हम लोग किसी तरह किनारे लगे, सो और सब तो मिल गये, परन्तु केवल दो लड़के रह गये थे। सो छोटा तो यह आज आपके दर्शनसे पाया और एक बेटा इससे वर्ष बड़ा था अब तक नहीं मिला है। ऐसा राजाको बहुत धन्यवाद देने लगना। इस प्रकार समझाकर उन भांडोंको सेठने राजसभामें भेज दिया।

भाँडोंका कपट

पश्चात् वे सब भांड़ मिलकर राज्यसभामें गये, और राजाको यथायोग्य प्रणामकर उन लोगोंने पहले तो अपनी नकल खेल इत्यादि करके राजासे बहुतसा पारितोषिक प्राप्त किया, पश्चात् चलते समय सब परस्पर मुंहामुंह देखकर अंगुलियोंसे श्रीपालको ओर इशारा करके बतलाने लगे। यों ही ढंग बनाकर, थोडी देरमें ज्यों ही राजाकी ओरसे श्रीपाल लोगोंको पानका बीड़ा देनेके लिए गये, और अपना हाथ उठाकर बीडा देने लगे, त्यों ही सबके सब भांड अहहा! धन्य भाग्य! बिछुडे मिल गये, कहकर उठ पड़े, और श्रीपालको चारों ओरसे घेर लिया। कोई बेटा, कोई पोता, कोई पडपोता, कोई भतीजा, कोई पति इस तरह कह-कहकर कुशल पूछने लगे। और राजाको आशीर्वाद देकर बलैया लेने लगे, कहने लगे—

अहा! आज बड़ा ही हर्षका समय मिला जो हमारा बेटा हाथ लगा। हे नरनाथ! तुम युग युगांतरों तक जीओ! धन्य हो महाराज, प्रजापालक हो! तुमने हम दोनोंको आज पुत्रदान दिया है। यह चमत्कार देखकर राजाने उन भांड़ोंसे कहा—

"तुम लोग सच्चार हाल मेरे सामने कहो! नहीं तो सबको एकसाथ शूलीपर चढा दूंगा। नीच तिर्लज्जो! तुम लोगोंको कुछ भी ध्यान नहीं है कि किस कुलीन पुरुषको अपना पुत्र कह रहे हो। तब वे भांड हाथ जोड मस्तक झुका दीन होकर बोले—'महाराज दीनानाथ अन्नदाता! यह लडका हमारा ही है। मेरी स्त्रीके दो बालक थे, सो एक तो यही है और दूसरेका पता नहीं है। हम सब लोग समुद्रमें एक नावमें बैठे आ रहे थे, सो तूफानसे जहाज फट

गया, और हम लोग किसी प्रकार लकड़ीके पटियोंके सहारे कठिनतासे किनारे लगे। सो और सब तो मिल गये, परन्तु एक लड़का नहीं मिला है। हे महाराज! कृपा हो! आज आपके दर्शनसे सम्पत्ति और संतति दोनों ही मिले।

भांडोंके कथनको सुनकर राजाको बहुत पश्चाताप हुआ कि हाय! मैंने बिना देखे और कुल जाति आदि बिना ही पूछे कन्या ब्याह दी। निःसन्देह यह बड़ा पापी है, कि जिसने अपना कुल जाति आदि कुछ प्रगट नहीं किया और मुझे धोखा दिया। फिर सोचने लगा—नहीं, इस बातमें कुछ भेद अवश्य होना चाहिए, क्योंकि श्री गुरुने जिस भांति कहा था, उसी भांति यह पुरुष प्राप्त हुआ है, और हीन पुरुष कैसे ऐसे अथाह समुद्रको पार कर सकता है? इसके सिवाय इन भांड़ोंका और इसका रंग रुप और बर्ताव भी तो बिलकुल नहीं मिलता है। देव जाने क्या भेद है? फिर कुछ सोचकर श्रीपालसे पूछने लगे—

"अहो परदेशी! तुम सत्य कहो कि तुम कौन हो? और भांडोंसे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?" तब श्रीपालजीने सोचा—यहां मेरे वचनकी साक्षी क्या है? यह बहुत और मैं अकेला हूं। बिना साक्षी कहनेसे न कहना ही अच्छा है। यह सोचकर वह धीरवीर निर्भय होकर बोला—महाराज! इन लोगोंका ही कथन सत्य है। ये ही मेरे मां बाप और स्वजन सम्बन्धी हैं।

राजाको श्रीपालके इस कथनसे क्रोध उबल उठा, और उन्होंने तुरन्त ही बिना विचारे चांडालोंको बुलाकर इनको शूलीपर चढ़ा देनेकी आज्ञा दे दी। सत्य है, न जाने किस समय किसको कौन कर्म उदय आकर दुःख देता है, और क्या२ चमत्कार दिखाता है।

शूलीकी तैयारी

राजाकी आज्ञासे चांडालोंने श्रीपालको बांध लिया, और शूली देनेके लिये ले चले। तब श्रीपाल सोचने लगे, कि यदि मैं चाहूं तो इन सबको क्षणभरमें संहार कर डालूं, परन्तु ऐसा करनेसे भी क्या सुकुलीन कहा जा सकता हूं? कदापि नहीं, इसलिए अब उदयमें आये हुए कर्मोंको सहन करना ही उचित है, जिससे फिर आगेके लिए ये शेष न रहें। देखूं, अभी और क्या२ होता है? इस तरह सोचते हुए वे चांडालोंके साथ आ रहे थे कि किसी राजमहलकी दासीने यह सब समाचार गुणमालासे आकर कह दिया। सुनते ही वह मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़ी। जब सखियोंने शीतोपचार करके मुर्छा दूर की तो हे स्वामिन्! हे प्राणधार! करकर चिल्ला उठी, और दीर्घनिश्वास डालती हुई तुरन्त ही श्रीपालके निकट पहुंची और उन्हें देखते ही पुनः मूर्छित होकर गिर पड़ी।

जब मूर्छा दूर हुई तो भयभीत मृगीकी नाईं सजल नेत्रोंसे पतिकी ओर देखने लगी, और आतुर हो पूछने लगी—

स्वामिन्! मुझ दासीपर कृपा कर सत्यर कहो कि आप कौन और किसके पुत्र हैं? और इन भांडोंने आपपर कैसे यह मिथ्या आरोप किया है?

तब श्रीपाल बोले—"प्रिये! मेरा पिता भांड और माता भांडिनी और सब कुटुम्बी भांड है और इसकी हालमें साक्षी भी ही चुकी है फिर इसमें सन्देह भी क्या है? तब गुणमाला बोली—'हे नाथ! यह समय हास्य करनेका नहीं है। कृपाकर यथार्थ कहिये। पहिले तो मुझसे और ही कहा था और मुझे उसीपर विश्वास है, परन्तु यह आज मैं कुछ विचित्र ही

चमत्कार देख रही हूँ। मुझे विश्वास नहीं होता कि आपके माता पिता भांड हों। क्योंकि भांडोंमें रूप, कला, शील, साहस, दया, क्षमा, सन्तोष, धीरज, बल और पराक्रम आदि गुण कुछ भी उनमें नहीं हो सकते हैं। फिर आपको उनकी संतान कैसे कहा जाय? आपको जिनदेवकी दुहाई है। सत्य२ कहिये, क्योंकि कहा है—

या पुंसि देदीप्यमानसुभगे ह्यारोग्यता जायते।
गम्भीरं भयवर्जितं गुणनिधिं सन्तोषजातं चिरं॥
विख्यातं शुभनामधामसिमहिमा धर्यादिदारक्षमं।
नेत्रानन्दकरो न भूमिपतिर्यो हीने कुले जायते॥

अर्थात्—सुन्दर, रूपवान, निरोगी, गम्भीर, भयरहित, गुणनिधि, सन्तोषी, शुभ नामवाला, कीर्तिवान और नेत्रोंको आनंद देनेवाला ऐसा पुरुष हीनकुलमें कैसे जन्म ले सकता है? कदापि नहीं ले सकता।

तब श्रीपालजी बोले—प्रिये! तुम चिंता मत करो और अपना शोक दूर करो। समुद्रके किनारे जो जहाज ठहरे हैं उनमें एक रयनमंजूषा नामकी सुन्दरी है, जिसकी बात पहिले तुमसे कह चुका हूं सो तुम उससे जाकर मेरा सब वृत्तांत पूछ लो। वह जानती है, वही तुमसे सब कहेगी। यह सुनते ही वह सती शीघ्र ही समुद्र किनारे गई, और रयनमंजूषा! रयनमंजूषा!! कहके वहां पुकारने लगी। तब रयनमंजूषाने सुनकर विचारा—

यहां परदेशमें मुझसे कौन परिचित है? चलो देखो, तो सही कौन है? और क्यों बुला रही है? यह सोच वह जहाजके ऊपर आकर देखने लगी, तो उसके [illegible] सुकुमार स्त्रीको खड़ा हुआ पाई, जो [illegible] [illegible]

मिलाप कर रही है, और जिसका शरीर धूलसे धूसरित हो रहा है। तथा अस्तव्यस्त वस्त्रोंमें खड़ी है। उसे देख रयन-मंजूषा करुणामय स्वरसे बोली—

'हे बहिन ! तू क्यों रो रही है, और क्यों इतनी अधीर हो रही है ? तू कौन ? और यहां कैसे आई ?

गुणमालाको इसके वचनोंसे कुछ धैर्य हुआ। वह मनको सम्हाल करके बोली-'स्वामिनी ! मेरे पिताने मुनिराजसे पूछा था कि जो पुरुष निज बाहुबलसे समुद्र तिरकर यहां आये, वही तेरी कन्याका पति होगा, सो ऐसा ही हुआ कि यहां कुछ दिन हुए एक पुरुष श्रीपाल नामका महातेजस्वी रूपमें कामदेवके समान धीरवीर, महाबली, निजबाहुबलसे समुद्र तिरकर आया और मेरे पिता (यहांके राजा) ने उसके साथ मेरा पाणिग्रहण भी करा दिया। इस प्रकार बहुत दिन हम दोनों आनन्दसे रहे परन्तु आज बहुतसे भांड राजसभामें आये, और अपनी चतुराईसे राजाको प्रसन्नकर पारितोषिक प्राप्त किया। पश्चात् उन्होंने मेरे पतिको देखकर पकड़ लिया। और 'पुत्र-पुत्र' कहकर चुम्बन करने लगे, बलैया लेने लगे, और राजासे कहने लगे कि यह तो हमारा पुत्र है !

तब राजाको बहुत दुःख हुआ, और उन्हें हीनकुलीन जानकर शूलीकी आज्ञा दे दी है। इसलिए स्वामिनी ! तुम इसके विषयमें जो कुछ जानती हो तो कृपाकर कहो, ताकि मेरे स्वामीकी प्राणरक्षा हो। मुझ अनाथको पति भिक्षा देकर सनाथ करो !" तब रयनमंजूषा बोली—हे बहिन ! तू शोक मत करे। वह पुरुष चरमशरीरी महाबली है, उत्तम राज-वंशीय है मरनेवाला नहीं है ! बस, मैं तेरे पिताके साथ चलती हूं और वहीं सब वृत्तांत कहूंगी।

रयनमंजूषाका श्रीपालको छुड़ाना

रयनमंजूषा श्रीपालका नाम सुनते ही हर्षसे रोमांचित हो गई, और लम्बेर पांव बढ़ाती हुई शीघ्र ही राजसभामें आकर पुकार करके प्रार्थना करने लगी कि—हे महाराज! प्रजापालक! दीनबन्धो! दयासागर! न्यायावतार! कृपा करके हम दीनोंकी प्रार्थना पर भी कुछ ध्यान दीजिये। अन्याय हुआ जा रहा है। बिना विचारे ही एक निर्दोष व्यक्तिकी हत्या कर हम दीन अबलाओंको आप अनाथ बना रहे हैं। राजाने उनकी पुकार सुनकर सामने बुलाया और पूछा—

हे सुन्दरियों! तुम क्या कहना चाहती हो? तुमको निःकारण किसने सताया है? शीघ्र कहो। तब दोनों हाथ जोड़कर बोली—"महाराज! हमारे पति श्रीपालको निष्कारण शूली हो रही है इसका न्याय होना चाहिये।"

राजाने कहा—सुन्दरियों! यह राजवंशका अपराधी है। यह वंशहीन भाँडोंका पुत्र हो करके भी यहां वंश छिपाकर रहा और मुझे धोका दिया है, इसलिये उसे अवश्य ही शूली होगी।

रयनमंजूषा बोली—"महाराज! यह एक-अंगी न्याय है, एक ओरकी बात मिश्रीसे भी मीठी होती हैं, परन्तु प्रतिवादीके लिए तीक्ष्ण कटारी है, इसलिए पहिले विचार कीजिये। और फिर जो न्याय हो सो कीजिये। हम तो न्याय चाहती हैं। राजाने रयनमंजूषासे कहा—"अच्छा! तुम इस विषयमें कुछ जानती हो तो कहो।"

तब रयनमंजूषाने कहा—हे नरनाथ! यह अंगदेश चंपापुरीके राजा अरिदमनका पुत्र है। और उज्जैनके राजा

पहुपालकी रूपवती व गुणवती कन्या मैनासुन्दरीका पति है। यह वहांसे चलकर रास्तेमें बहुत जनोंको [illegible] करता हुआ हंसद्वीप आया, और वहांके राजा कनककेतुको जीतके मुझ रयनमंजूषाका पाणिग्रहण किया। पश्चात् आगे चला, सो जहाजोंके स्वामी धवलसेठकी मुझपर कुदृष्टि हुई। जिससे उसने छलकर मेरे पतिको समुद्रमें गिरा दिया, तब मेरा शील भंग करनेका उद्यम किया, सो शील धर्मके प्रभावसे किसी जलदेवने आकर मेरा उपसर्ग दूर किया और सेठको बहुत दण्ड दिया। उस समय देवने मुझसे कहा था कि पुत्री! तू चिंता मत कर, शीघ्र ही तेरा स्वामी तुझे मिलेगा, और वह बड़ा राजा होगा सो महाराज, अबतक मेरे प्राण इसी आशापर ही टिक रहे हैं। अब आपके हाथमें रक्षा है, सो कृपाकर या तो हमारे पतिकी रक्षा कीजिये या हमारा भी अन्त निज नेत्रोंसे देखिये।

राजा, रयनमंजूषासे यह वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने अविचारीपनपर पश्चात्ताप करता हुआ तुरन्त ही श्रीपालके पास गया और हाथ जोड़कर विनती करने लगा—'हे कुमार! मेरी बहुत भूल हुई, सो मुझपर क्षमा करो! मैं अधम हूं, जो बिना ही विचारे यह अनर्थ कार्य किया। अब मुझपर दया करके घर पधारो।'

तब श्रीपालने कहा—'महाराज! संसारमें यह कर्म ही जीवोंको अनादिकालसे कभी सुख और कभी दुःख दिया करता है। इसमें आपका कुछ दोष नहीं है। मेरे ही पूर्वोपार्जित पाप कर्मोंका अपराध है। जैसा किया वैसा पाया। अच्छा हुआ, जो वे कर्म छूट गये। मेरा इतना ही भार कम हुआ। मुझे तो कुछ भी दुःख व विषाद नहीं है। जो हुआ सो ठीक ही हुआ। अब आपको पछतावा करनेसे क्या? हां, इतना

बात अवश्य है कि आप जैसे समीचीन पुरुषोंको प्रत्येक कार्य सदैव विचारपूर्वक ही करना चाहिये।" कहा है कि—

किं विद्याधरबाहनादिनिपुणो वा : कुलो गेहकान् ।
किं योगीश्वरकाननेषु कथितं ध्यानं धृतं केवलम् ॥
किं राज्यं सुरनाथतुल्यभवतो भूमंडले विद्यते ।
यच्चिन्तां च विवेकहीनमनिशं दुःखं च पुंसोधिकम् ॥

अर्थात् विद्याधरकी गंधर्वादि विद्याएं, योगीश्वरोंका वनमें अचल ध्यान और स्वर्ग समान समस्त पृथ्वीका राज्य भी विवेक बिना निष्फल है।

राजाने लज्जासे सिर नीचा कर लिया और श्रीपालको गजारूढ कर बडे उत्साहसे राजमहलको ले आये। नगरमें घरोंघर मंगलनाद होने लगा और हर्ष मनाया जाने लगा। श्रीपाल जब महलमें आये, तो दोनों स्त्रियोंने प्रेमपूर्वक पतिकी वंदना की, और परस्पर कुशल पूछकर अपना २ सब वृत्तांत कहा तथा उनको सुनकर चित्तको शांत किया, और वे आनन्दसे समय बिताने लगे—

राजाने सेवकोंको भेजकर धवलसेठको पकड़ बुलाया, सो राजकीय नौकर उसे मारते पीटते तथा बड़ी दुर्दशा करते हुए राजसभा तक लाये। तब राजाने उस समय श्रीपालजीको भी बुलाया और कहा—"बेटा, इस दुष्टने आपने महोपकारी आप जैसे धर्मात्मा नररत्नको निष्कारण बहुत सताया है इसलिए अब इसका शिरच्छेद करना चाहिए।" यह सुनकर और सेठकी दुर्दशा देखकर श्रीपालको दुःख हुआ। वे राजासे बोले—'महाराज! यह मेरा धर्मपिता है। कृपाकर इसे छोड़ दीजिये।। इसने मेरे साथ जो भी अवगुण किए है वे मेरे लिए तो गुणस्वरूप ही हो गये हैं। मैंने तो इनकी ही प्रसादसे

आपके दर्शन हुए और अतुल सुख प्राप्त किया। यदि ये मुझे समुद्रमें न गिराते तो मैं यहां तक न आता और न गुणमाला जैसी महिलाभूषणको विवाहता।

इस प्रकारसे राजाने श्रीपालके कहनेसे सेठ उसके सब साथियोंको छोड़ दिया, तथा आदरपूर्वक पंचामृत भोजन कराकर बहुत सुश्रूषा की।

धवलसेठने श्रीपालजीकी यह उदारता, दयालुता तथा गंभीरता देखकर लज्जित हो नीचा सिर कर लिया, और श्रीपालकी बहुत स्तुति की। मन ही मन पश्चाताप करने लगा—हाय मैंने इसको इतना कष्ट दिया, परन्तु इसने मुझ पर भलाई ही की। हाय! मुझ पापीको अब कहां ठौर मिलेगा? इस प्रकार पश्चात्ताप कर ज्योंही उसने एक दीर्घ उच्छ्वास ली कि उसका हृदय फट गया, और तत्काल प्राण-पंखेरू उड़ गये। और वह मरकर पापके उदयसे नर्क चला गया। यहां श्रीपालको सेठके मरनेका बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सेठानीके पास जाकर बहुत शोक प्रदर्शित किया। पश्चात् उसे धैर्य देकर कहने लगा—

माताजी! होनी अमिट है, तुम दुःख मत करो, मैं तुम्हारा आज्ञाकारी पुत्र हूँ, जो आज्ञा हो सो ही करूं। यहां रहो तो सेवा करूं और देश व गृह पधारो तो पहुंचा दूं, सब द्रव्य आपहीका है, शंका मत करो, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। तब सेठानी बोली—हे पुत्र! तुम अत्यंत दयालु और विवेकी हो। जो होना था सो हुआ, अब आज्ञा दो तो मैं घर जाऊं। तब श्रीपालने उसकी इच्छा प्रमाण उसको, यथायोग्य व्यवस्था करके विदा किया और आप वहां सुखसे दोनों स्त्रियों सहित रहने लगे।

श्रीपालजीका चित्ररेखासे ब्याह

एक दिन श्रीपालजी अपनी दोनों स्त्रियों सहित आनंदमें मग्न हुये बैठे थे कि दरवानने आकर खबर दी कि महाराज! द्वारपर एक राजदूत आपको बुला रहा है, आज्ञा हो तो बुलावें। श्रीपालजीने उसे आनेकी आज्ञा दी, तब वह दूत भीतर आया और नमस्कार कर विनयपूर्वक बोला—

हे महाराज! यहांसे थोडी दूर धन, कण, कंचनसे परिपूर्ण एक कुण्डलपुर नामका बहुत बडा नगर है। वहांका राजा मकरकेतु अत्यन्त दयालु और ऐसा प्रजापालक है कि जिसके राज्यमें कोई दीन दुःखी मिलते ही नहीं है। उस राजाके यहां कपूरतिलका नामकी रानीके गर्भसे उत्पन्न चित्ररेखा नामकी एक अत्यन्त रूपवती व गोलवती कन्या है। सो राजाने एक दिन कन्याको यौवनवती देखकर श्री मुनिसे पूछा था कि इस कन्याका वर कौन होगा?

तब गुरुने उसका सम्बन्ध आपसे होना बताया है, इसलिये कृपाकर आप वहां पधारिये और अपनी नियोगिनी कन्याको विवाहिये। मैं श्रीमानको लेनेके लिए ही आया हूं यह संदेश सुनकर श्रीपालको बड़ा हर्ष हुआ और दूतको बहुतसा पारितोषिक दिया। पश्चात् आप अपनी दोनों स्त्रियोंसे विदा होकर कुण्डलपुर गये।

दूतने इनको नगर बाहर ठहराकर राजाको समाचार दिया, तो राजा बडी सजधजके साथ इनकी अगवानीको आया, और आदरसे नगरमें ले गया। पश्चात् इनका कुछ गोत्रादि पूछकर अपनी चित्ररेखा नामकी सुन्दर गुणवती कन्याका विवाह शुभ मुहूर्तमें इनके साथ परमेष्ठीयंत्रकी पूजा विधि पुरस्सर अग्नि व पंचकी साक्षीसे कर दिया। सब

नगरमें [illegible] श्रीपालजी चित्ररेखासे ब्याहकर आनन्द सहित वहां रहने लगे।

श्रीपालका अनेक राजपुत्रियोंसे ब्याह

एक दिन श्रीपाल चित्ररेखा सहित मधुर भाषण करते हुए बैठे थे, कि कंचनपुरका राजदूत आया। और श्रीपालजीसे नमस्कार कर बोला--"हे स्वामिन्! सुनो, कंचनपुरके राजा वज्रसेन और उनकी रानी कंचनमाला है जिसके गर्भसे सुशील, गन्धर्व, यशोधर और विवेक ऐसे चार पुत्र बड़े गुणवान और साहसी हुए है। तथा विलासमती आदि नवसौ पुत्रियां रूप लावण्यताकार पूर्ण है, सो एक दिन जब राजाने निमित्त ज्ञानीसे इनका सम्बन्ध पूछा तब उसने उनका विवाह आपके साथ होना बताया था, इसलिए आप कृपाकर शीघ्र ही पधारिये। यह सुन श्रीपाल प्रसन्न होकर श्वसुरकी आज्ञा ले कंचनपुर गये और वहां उन नवसौ कन्याओंके साथ आनंदसे रहने लगे। वहां पर कुछ दिन ही दिन हुए थे कि कुंकुमपुरका एक दूत आया, और बोला—

महाराज! हमारे यहांका राजा यशसेन महायशस्वी और पुण्यवान है। उसके गुणमाला आदि चौरासी स्त्रियां हैं और स्वर्णबिम्ब आदि पांच पुत्र तथा शृङ्गारगौरी आदि सोलहसौ कन्यायें है उनमें आठ कन्यायें मुख्य है, जो समस्यायें कहती है। इसलिये जो कोई उनकी समस्याओंकी पूर्ति करेगा सो ही उन सबको विवाहेगा। आजतक अनेकों राजपुत्र आये, परन्तु वे उनकी समस्याओंको पूर्ति यथोचित् नहीं कर सके। इसलिये आप वहां पधारिये, यह कार्य कदाचित आपसे ही

सकेगा। यह सुन श्रीपालजी प्रसन्न हो, श्वसुरकी आज्ञा लेकर कुंकुमपुरमें पहुँचे, सो वहाँके राजा धर्मसेनने इनका आदर सहित स्वागत किया और अच्छे स्थानमें डेरा कराया। सब नगरमें मंगलगान होने लगा और जब सब राजकन्याओंने यह समाचार पाकर वो सभी हर्ष सहित उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर इनसे मिलने आई व इनका अनुपम रूप देखते ही मोहित हो गई।

श्रीपालजीने उनको आते देखकर यथायोग्य सन्मान सहित बैठनेको आज्ञा दी और कहा—'हे सुन्दरियो! आप अपनीर समस्यायें कहिये।

तब प्रथम ही शृङ्गारगौरी बोली—

समस्या–'जह साहस तहँ सिद्धि' ॥१॥

पूर्ति–अवसर कठिन विलोकके, यही राखिये बुद्धि।
कब हुं न साहस छोडिये, जहँ साहस तहँ सिद्धि ॥१॥

तब दूसरी सुवर्णगौरी बोली—

समस्या–'गोपि खंतहु सव्व' ॥२॥

पूर्ति–प्रथम न विलसो धननि, कृपण है संचय दव्व।
जुवा अथवले बको, गोपे खनतहु सव्व ॥२॥

तब तीसरी पीलीमदेवी बोली—

समस्या–'ते पंचायण सीह' ॥३॥

पूर्ति–शील विहूना जे वि नर, तिनकी मैली देह।
ते चारित्र निर्मला, ते पंचायण सीह ॥३॥

तब चौथी सुहाग गौरी बोली—

समस्या–'तासु कांचरा मीठ' ॥४॥

पूर्ति–रयनागर छोडो चवे, दादुर कुवे वईठ।

जिह श्रीफल नहीं चाखिया, तासु काचरा मीठ ॥४॥

तब पांचवीं सोमकला बोली—

समस्या-'कास पिवाऊं खीर' ॥५॥

पूर्ति-रावण विद्या साधियो, दशमुख एक शरीर।
भाई संशय पड़ रहा, कास पिवाऊं खीर ॥५॥

तब छठवीं शशिरेखा बोली—

समस्या-'सो मैं कहूं न दीठ' ॥६॥

पूर्ति-सातों सागर हूं फिरा, जम्बूद्वीप पईठ।
भांत पराई जो करे, सो मैं कहूं न दीठ ॥६॥

तब सातवीं संदारेखा बोली—

समस्या-'काई विठियो सैण' ॥७॥

पूर्ति-कुन्ती जाये पंच सुत, पांचों पंच सयेण।
गंधारी सो जाइया, काई विठियो सैण ॥७॥

तब आठवीं पद्मावती बोली—

समस्या-'सो तसु काय करेय' ॥८॥

पूर्ति-अक्षर जासु न उगणो, परी पावलो पेय।
अक्षर पास बइठड़ी, सो तसु काय करेय ॥८॥ +

इस प्रकार जब आठों समस्याओंकी पूर्ति हो चुकी तब सब कुटुम्बको बड़ा आनंद हुआ। और तुरत ही शुभ मुहूर्तमें राय यमसेनने अपनी सोलहसौ गुणवती कन्यायें विधिपूर्वक श्रीपालजीको विवाह दीं। श्रीपालजी कुछ दिन तक विवाहके बाद वहां ही रहे, और सुखसे समय व्यतीत किया। पश्चात्

+उक्त समस्यायें हमारी समझमें ठीक नहीं आई इसलिये कवि परिमल्लकृत पद्य ग्रंथोंके अनुसार जैसीकी तैसी ही यहां उद्धृत कर दी हैं।

एक दिन कुछ सोच विचारकर राजाके पास आकर आज्ञा ली और सोलहसौ स्त्रियोंको विदा कराकर वहां आये अहां नवसौ स्त्रियां थीं, और वहांके राजासे भी घर जानेकी आज्ञा मांगी।

तब राजाने कहा—कहा 'हे गुणधीर! आपके प्रसंगसे मुझे बडा आनन्द होता है इसलिये कृपाकर कुछ दिन और भी इस स्थानको पवित्र करो।" तब श्रीपालने श्वसुरका कहना मानकर कुछ दिन और भी वहां निवास किया। पश्चात् वहांसे भी सब स्त्रियोंको विदा कराकर कंचनपुर आये, और वहांसे चित्ररेखाको विदा कराई और पुण्डरीकपुर आकर कोकण देशकी दो हजार कन्यायें विवाहीं, फिर मेवाड (उदयपुर) की सौ कन्याएं विवाहीं, फिर तैलंग देशकी एक हजार विवाहीं, पश्चात् कुंकुमद्वीपमें आये, और गुणमाला तथा रयनमंजूषासे मिलकर वहींपर कुछ समय तक विश्राम किया। सुखमें समय जाते मालूम नहीं पड़ता है, सो बहुतसी रानियों सहित क्रीडा करते हुए सुखसे काल व्यतीत करने लगे।

श्रीपालका उज्जैनको प्रयाण

एक दिन राजा श्रीपाल रात्रिको सुखसे नींद ले रहे थे कि अचानक नींद खुल गई और मैनासुन्दरीको सुधमें बेसुध हो गये। वे सोचने लगे-"ओहो! अब तो बारह वर्षमें थोडे ही दिन शेष रह गये हैं। सो यदि मैं अपने कहे हुए समय पर नहीं पहुँचूंगा, तो फिर वह सती स्त्री नहीं मिलेगी इसलिये अब शीघ्र ही वहां चलना चाहिये, क्योंकि इतनः

जो ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हुआ है, यह सब उसीके कारणसे हुआ है सो मैं यहां सुख भोगूं और वह वहां मेरे विरहसे संतप्त रहें ! यह उचित नहीं है इसी विचारमें रात्रि पूरी हो गई ।

प्रातःकाल होते ही नित्यक्रियासे निवृत्त होकर वे राजाके पास गये और सब वृत्तांत कहकर घर जानेकी आज्ञा मांगी । सब राजा सोचने लगे कि जानेकी आज्ञा देते हुए तो मेरा जी दुखता है, परन्तु हटकर रखना भी अनुचित है । ऐसा विचारकर अपनी पुत्री समेत श्रीपालको अन्य समस्त स्त्रियोंको बहुतसे वस्त्राभूषण पहिराकर उन्हें विदा करते समय इस प्रकार हित शिक्षा दी—

"हे पुत्रियो ! यह पु वडा तेजस्वी, वीर, कोटीभट्ट है । तुम्हारे पूर्व पुण्यसे ऐसा पति मिला है । सो तुम मन, वचन, कायसे इन सेवा करना । सासु आदि गुरु जनोंकी आज्ञा पालन रना, परस्पर प्रीतिसे रहना, छोटों और दीन दुखियोंपर सदा करुणाभाव रखना ! कुगुरु, कुदेव और कुधर्मी स्वप्नमें भी आराधन न करना । जिनदेव, जिन-गुरु और जिन धर्मको कभी मत भूलना । इस प्रकारसे दोनों कुलकी लाज रखना" इत्यादि शिक्षा देकर विदा किया ।

यहांसे चलते चलते वे सोरट देशमें आये और वहांके राजाकी कन्यायें विवाही । वहांसे चलकर गुजरात देशमें आये और वहांके राजाकी भी पांचसौ कन्यायें विवाहीं । फिर महाराष्ट्र देशमें आये, और वहां चारसौ कन्यायें विवाहीं । फिर वैराट देशमें आकर दोसौ कन्यायें व्याही ।

इस प्रकार श्रीपालजी बहुतसी रानियों और बडी सेन्या सहित उज्जैनके उद्यानमें आये, जहां इनका कटक नगरके

चारों ओर ठहर गया। वहां घोडोंकी हींस, हाथियोंकी चिंघाड, बैलोंकी डकार, ऊंटोंकी बलबलाहट, रथोंकी गड़-गडाहट, प्यादोंकी खटखटाक, बाजोंकी भनभनाट और भेरोंकी भीमनाद आदिसे बड़ा घमसान कोलाहल होने लगा। जलचर भयके मारे जलमें छिप रहे और वनचर स्थान छोड़२ कर भाग गये। नभचर भी आकाशमें स्थानभ्रष्ट हुए इधर उधर शब्द करते डोलने लगे। नगरमें भी बड़ी हल-चल मच गई। कायर पुरुषोंके हृदय कांपने लगे। वे सोचने लगे कि अवसर पाकर चुपकेसे हमलोग निकल चलें। ऐसी नामवरीमे क्या रक्खा है जो प्राण जाय? वहीं जंगलमें छिपछिपाकर दिन बिता देंगे। कृपण पुरुष धनको बांध२ जमीनमें गाड़ने लगे। चोर लुटेरे लूटका अवसर देखने लगे, विषयी भावी विरहके दुःखका अनुभव करने लगे। शूरवीर अपने हथियार निकाल२ मांजने लगे। वे सोचने लगे—हमारे आज राज्यके नमक खानेका बदला देनेका शुभ दिन आन पहुँचा है।

विद्वज्जन तो संसारके विषयकषायोंसे विरक्त हो द्वादशा-नुप्रेक्षाका चिन्तवन करने लगे। वे सोचने लगे उपसर्ग दूर हो तो संयम लें और सदैवके लिए इस जंजालसे छूटें। बहुतसे लोग सांवन्त होकर राजाके पास दौडे और पुकारने लगे-हे महाराज! न जाने यहांका कौन राजा अपने नगर पर चढ़ आया है, सो रक्षा करो। राजा भी बड़े विचारमें पड गये और मंत्रियोंको बुलाकर सलाह करने लगे। मंत्री भी अपनी अपनी राय बताने लगे। इसी प्रकार सोचते२ संध्या हो गई इसलिये राजा भी सेनाको तैयार रहनेकी आज्ञा देकर आप अन्तःपुरको चले गये।

—※—

श्रीपालको कुटुम्ब-मिलाप

जब रात्रि हो गई, और सब लोग सो गये, तब श्रीपाल-जीने सोचा, कि मैंने १२ वर्षका वादा किया था, सो आज हा पूर्ण होता हैं । यदि मैं इसी समय मैनासुन्दरीसे नहीं मिलता हूं तो वह भोर होते ही दीक्षा ले लेगी और फिर निकट आकर भी वियोगका दुःख सहना होगा । इसी विचारमें उसे क्षण२ भारी मालूम होने लगा । और इसलिये वह महा-बली पिछली रात्रिको अकेला ही उठकर चला, सो शीघ्र ही माता कुन्दप्रभाके महलके पास पहुँचा, और द्वारपर जाकर खडा हो गया, तो क्या सुनता है कि प्राणप्यारी मैनासुन्दरी अपनी सासुके समीप बठी हुई इस प्रकार कह रही है—

माताजी ! आपके पुत्र तो अबतक नहीं आये, और १२ वर्ष पूर्ण हो गये । इसलिए मैं अब प्रातः काल ही श्री जिनेश्वरी दीक्षा लूंगी । मुझे आज्ञा दीजिये । इतने दिन मेरे आशा ही आशामें बीत गये । अब व्यर्थ समय बितानः उचित नहीं है । न पतिका ही सम्मेलन हुआ और न संयम ग्रहण किया तो नरजन्म व्यर्थ ही गया समझो और उनका दिया हुआ भी वचन पूर्ण हो गया है । कहा है—

"प्रसरी या संसारमें, आशा पास अपार ।
बन्धे प्राणी छूटे नहीं, दुःख पावें अधिकार ।।

सो उनके आनेकी अब कुछ आशा नहीं दिखती हैं क्योंकि परदेशकी बात है । न जाने स्वामी राह भूल गये या किसी स्त्रीके वश होकर मेरी याद भुल गये, अथवा अन्य ही कोई कारण हुआ, क्योंकि अबतक कुछ संदेशा भी तो नहीं मिला है । इसीसे और भी चित व्याकुल हो रहा है । माताजी ! अबतक

आपकी जो सेवा बन सकी सो यदि उसमें मेरी भूल व अज्ञानतासे जो त्रुटि हुई हो सो क्षमा करो और दयाकर आज्ञा दो कि मैं शीघ्र ही सकल संयम धारण करूं। अब न विलम्ब करनेसे मेरी आयुका अमूल्य समय व्यर्थ ही जाता दीखता है।

तब कुन्दप्रभा बोली—"पुत्री! दो चार दिनतक और भी धैर्य रक्खो। यदि इतनेमें वह (मेरा पुत्र) न आवेगा, तो मैं और तू दोनों ही साथ२ दीक्षा ले लेवेंगे, परन्तु मुझे आशा ही नहीं किन्तु पूर्ण विश्वास है कि वह धीर, वीर अवश्य ही इतनेमें आवेगा। तब सुन्दरी बोली—

माताजी! यह तो सत्य है कि स्वामी अपने वचनके पक्के हैं परन्तु कर्म बड़ा बलवान है। क्या जाने स्वामीको कौनसी पराधीनता आगई है इससे नहीं आये। बिना संदेश मैं कैसे निश्चय करूं? कि वे इतने दिनोंमें आ ही जावेंगे।"

तब माताने कहा—"हे पुत्री! तू इतनी अधीर मत हो। निश्चय ही तेरा पति २-४ दिनमें आवेगा। सो यदि वह आया और सूना घर देखेगा, तो बहुत दुःखी होगा, इसलिए जैसे तुम इतने दिन रहो हो, वैसे भी २-४ दिन सही। फिर हम तुम दोनों ही दीक्षा लेंगे।" मैनासुन्दरी बोली माताजी! अब मोहवश समय बिताना व्यर्थ है। आप भी मोहको छोड़कर चलों, और प्रभूके चरणोंकी सेवा करो। अब रहना उचित नहीं है। जो रहूंगी तो बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। माताजी! आप तो उनकी जननी हो। सो पुत्रकी विभूती भी देखोगी और मेरे जैसा तो उनके अनेकों दासियां होंगीं। सो अब व्यर्थ ही अपमान सहनेके लिए रहूँ और इसपर भी उनके आनेकी कुछ खबर नहीं है अब क्यों अपना समय बिताया जाय?

इस प्रकार सासु बहूकी बातें हो रही थीं, कि श्रीपालजी धीमे स्वरसे किवाड़ खटखटाकर बोले—माताजी ! किवाड़ खोलिये, आपका प्रिय पुत्र श्रीपाल द्वार पर खड़ा है ।

इस प्रकारकी आवाज सुनकर दोनों सासु बहू सहम गईं, उनका वियोगका शोक हर्षमें परिणत हो गया, उनके हर्ष रोमांच हो आए और इसलिये शीघ्रताशीघ्र उन्होंने किवाड़ खोल दिये । किवाड़ खुलते ही वे भीतर गये और माताको प्रणाम किया। माताने हर्षित हो आशीर्वाद दिया—हे पुत्र ! तुम चिरंजीवी होकर प्राप्त की हुई लक्ष्मीको सुखपूर्वक भोगो और तुम्हारा यश सर्वत्र फैले ।

पश्चात् श्रीपालजीकी दृष्टि मैनासुन्दरीकी ओर गई, तो देखा कि वह कोमलांगी अत्यंत क्षीणशरीरी हो रही है तब उसके महलमें गये । वहां पहुँचते ही मैनासुन्दरी पांवपर गिर पड़ी । कुछ कालतक सुखमूर्छित होनेसे चुपकी ही रही, फिर नम्र शब्दोंमें चित्तके हर्षको प्रकाशित करने लगी—'अहा ! आज मेरा धन्यभाग्य है, जो मैं स्वामीका दर्शन कर रही हूं ।

हे प्राणवल्लभ ! इस दासीपर आपको असीम कृपा है, जो समय पर दर्शन दिये ! धन्य हो ! आप अपने वचनके निर्वाह करनेवाले है, मैं आपकी प्रशंसा करनेको असमर्थ हूं ।'

तब कोटीभटने अपनी प्रियाको कंठसे लगाकर उसे धैर्य दिया ! पश्चात् परस्पर कुशल वृत्त पूछनेके, श्रीपालजी माता और मैनासुन्दरीको अपने कंटकमें ले गये, और वहां जाकर माताको उच्चासनपर बैठाकर निकट ही मैनासुन्दरीको उनहीके आसनके पास ही स्थान दिया पश्चात् रयनमंजूषा आदि समस्त स्त्रियोंको बुलाकर कहा—"यह उच्चासन पर विराजमान हमारी पूज्य माता और तुम्हारी सासुजी हैं और उनके

पास हो मेरी प्रथम पत्नी पट्टरानी मैनासुन्दरी है। इन्हींके प्रसादसे तुम सब आठ हजार रानियां और ये सब संपत्तियां मुझे प्राप्त हुई हैं।

तब उन स्त्रियोंने स्वामीके मुखसे यह सम्बन्ध जानकर यथाक्रम सासु कुन्दप्रभा और मैनासुन्दरीको यथायोग्य नमस्कार करके बहुत विनय सत्कार किया। इस प्रकार परस्पर सम्मिलन हुआ। पश्चात् श्रीपालीने माता और मैनासुन्दरीको अपना सब कटक दिखाया।

माताकी आज्ञा लेकर मैनासुन्दरीको आठ हजार रानियोंकी मुख्य पट्टरानीका पद प्रदान किया और बोले—

'हे सुन्दरी! यह सब कुछ जो विभूति दीखती है सो तेरे ही प्रसादसे है। मैं तो विदेशी पुरुष हूँ, जो विपत्तिका मारा यहां आया था।' तब मैनासुन्दरीने विनययुक्त हो नीचा मस्तक कर लिया और बोली—

'हे स्वामिन्! मैं आपको चरणरजके समान हूं। मैंने अपने पूर्व पुण्यके योगसे ही जैसा भर्तार पाया है। आप तो कोटीभट्ट, साहसी, धीर वीर, पराक्रमी और महाबली हो। लक्ष्मी तो आपकी दासी है। आपकी निर्मल कीर्ति दशों दिशाओंमें व्याप्त हो रही है।'

इस तरह मैनासुन्दरीका पट्टाभिषेक हो गया और वे रयनमंजुषा गुणमाला, चित्ररेखादि समस्त आठ हजार

रानियां मैनासुन्दरीकी सेवा सुश्रुषा करने लगीं। पश्चात् एक समय मैनासुन्दरीको अपने पिताके पूर्वकृत्यका स्मरण हो आया सो वह बदला लेनेके विचारसे पतिसे बोली—

'हे स्वामिन्! आप तो दिगंत-विजयी हो इसलिये मेरी इच्छा है कि आपके द्वारा मेरे पिताका युद्धमें मान भंग होवे और जब वे कांधेपर कुल्हाडी धरे हुए, कम्बल ओढ़कर और लंगोटी लगाकर सन्मुख आवें तभी छोडना चाहिये।'

यह सुनकर कोटीभट्ट चुप हो गये और कुछ सोच विचार कर बोले—'हे कांते! तुम्हारे पिताने मेरा बडा उपकार किया है, अर्थात् कोढीको कन्या दी है। जिस समय मैं स्वयं स्वजनोंसे वियोगी हुआ यत्र तत्र फिर रहा था तब उनने मेरी सहायता की थी सो ऐसे उपकारीका अपकार करना कृतघ्नता और घोर पाप है। अतः मुझसे यह कार्य कठिन है।' तब मैनासुन्दरी बोली—

'हे स्वामिन्! मैं कुछ द्वेषरूपसे नहीं कहती हूं, परन्तु यदि कुछ चमत्कार दिखाओगे तो उनको जिनधर्म पर दृढ श्रद्धा हो जायगी यही मेरा अभिप्राय है।

श्रीपालका पहुपालसे मिलाप

श्रीपाल प्रियाके ऐसे वचन सुनकर अत्यंत हर्षित हुए और तुरंत ही एक दूतको बुलाकर उसे सब भेद समझाया, और राजा पहुपालके पास भेजा । सो दूत स्वामीकी आज्ञानुसार शीघ्र ही राजाकी ड्योढ़ीपर जा पहुँचा और दरवानके हाथ अपना संदेशा भेजा । राजाने उसे आनेकी आज्ञा दी, सो उस दूतने सन्मुख जाकर राजा पहुपालको यथायोग्य नमस्कार किया । राजाने कुशल पूछी, तब दूत बोला—

'महाराज ! एक अत्यंत बलवान पुरुष कोटीभट्ट अनेक देशोंको विजय करके और वहांके राजाओंको वश करता हुआ आज यहां आ पहुंचा है उसकी सेना नगरके चारों ओर पड़ रही है । उसके सामने किसीका गर्व नहीं है । सो उसने आपको भी आज्ञा की लंगोटी लगा कम्बल ओढ़ माथे पर लकड़ीका भार और कांधे कुल्हाड़ी धरकर मिलो तो कुशल है, अन्यथा क्षणभरमें विध्वंस कर दूंगा । इसलिये हे राजन् ! आप जो कुशल चाहते हो, तो इस प्रकारसे जाकर उससे मिलो, नहीं तो आप जानो । पानीमें रहकर मगरसे वैर करके काम नहीं चलेगा ।"

राजा पहुपालको दूतके वचनोंसे क्रोध आया, और वे बोले– "इस दुष्टका मस्तक उतार लो, जो इस प्रकार अविनय कर रहा है ।" तब नौकरोंने आकर दूतको तुरंत ही पकड़ लिया और राजाकी आज्ञानुसार दंड देना चाहा, परंतु मंत्रियोंने कहा– 'महाराज ! दूतको मारना अनुचित है, क्योंकि वह बेचारा कुछ अपनी ओरसे तो कहता ही नहीं है । इसके स्वामीने कहा होगा, वैसा ही तो कह रहा है, इसमें इसका कुछ अपराध नहीं है, इसलिये इसे छुड़वा देना ही योग्य है ।

और हे महाराज! यह राजा बहुत ही प्रबल मालूम पडता है, इसलिये युद्ध करनेमें कशलता नहीं दीखती है, किन्तु किसी प्रकार उससे मिल लेना ही उचित है।

तब राजाने मंत्रियोंके सलाहके अनुसार दूतको छुडवाकर कहा कि तुम अपने स्वामीसे कह दो कि मैं आपकी आज्ञा माननेको तत्पर हूँ। यह सुनकर दूत हर्षित होकर पीछे श्रीपालके पास गया, और यथावत् वार्ता कह दी कि राजा पहुपाल आपसे आपकी आज्ञानुसार मिलनेको तैयार हैं।

तब श्रीपालने मैनासुन्दरीसे कहा–प्रिये, राजा तुम्हारे कहे अनुसार मिलनेको तैयार है। अब उसे अभयदान देना ही योग्य है। मैनासुन्दरीने कहा 'आपकी इच्छा हो सो कीजिये।' तब श्रीपालने पुनः दूतको बुलाकर राजा पहुपालके पास यह संदेशा भेजा कि आप चिंता न करे और अपने दलबल सहित जैसा राजाओंका व्यवहार है उसी प्रकारसे आकर मिलें। सो दूतने जाकर पहूपालको यह संदेशा सुनाया। सुनकर राजाको बहुत हर्ष हुआ और दूतको बहुतसा पारितोषिक देकर विदा किया। तथा आप डंका, निशान, हय, गय, रथ, वाहनादि सहित बड़ी धूमधामसे मिलनेको चला। जब पास पहुंचा तब राजा पहूपाल हाथीसे उतरकर पांव प्यादे हो गया। यहां श्रीपालजी भी श्वसुरको पांव प्यादे आते देखकर आप भी पांव प्यादे चलकर सन्मुख गये, और दोनों परस्पर कंठसे कंठ लगाकर मिले। दोनोंको बहुत आनंद हुआ। राजा पहूपालके मनमें एकदम कुछ अनोखे भाव उत्पन्न हुए, इसलिए वह श्रीपालके मुंहकी ओर देखकर बोले—

'हे राजराजेश्वर ! आपको देखकर मुझे बहुत मोह उत्पन्न होता है, परंतु मैं अबतक आपको पहिचान नहीं सका हूं कि आप कौन हैं ?' तब श्रीपाल हंसकर बोले—महाराज ! मैं आपका लघु जंवाई श्रीपाल ही तो हूं, जो मैनासुन्दरीसे बारह वर्षका वायदा करके विदेश गया था, सो आपके प्रसादसे आज पीछे आया हूं ।' यह सुनकर राजाने फिरसे श्रीपालजीको गले लगा लिया, और परस्पर कुशल क्षेम पूछकर हर्षित हुये । नगरमें आनंद भेरी बजने लगी । फिर राजा अपनी पुत्रीके पास गया, और क्षमा मांगने लगा—

"हे पुत्री तू क्षमा कर । मैंने तेरा बड़ा अपराध किया है । तू सच्ची धर्मधुरंधर शीलवती सती है । तेरा बडाई कहां तक करूं ?' मैनासुन्दरीने नम्र होकर पिताको सिर झुकाया । पश्चात् राजा रयनमंजूषादि सब रानियोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ, और सर्व संघको लेकर नगरमें लौट आया । नगरकी शोभा कराई गई । घर२ मंगल बधावे होने लगे । राजाने श्रीपालका अभिषेक कराया और सब रानियों समेत वस्त्राभूषण पहिराये । इसप्रकार श्वसुर जंवाई मिलकर सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे ।

श्रीपालका चंपापुर जाना

इस प्रकार सुखपूर्वक रहते हुए श्रीपालको बहुत समय बीत गया। एक दिन बैठे२ उनके मनमें यही विचार उत्पन्न हो गया, कि जिस कारण हम विदेश निकले थे, वह अभी पूर्ण नहीं हो पाया है। अर्थात् पिताके कुलको प्रख्याति तो नहीं हुई और मैं यहां राज-जमाई ही बना हुआ हूं इसलिए अब अपने देशमें चलकर अपना राज्य प्राप्त करना चाहिये। यह सोचकर श्रीपालजी राजा पहुपालके निकट गये, और देश जानेकी आज्ञा मांगी। तब राजाको भी उनकी इच्छा-प्रमाण आज्ञा देनी पड़ी।

श्रीपाल मैनासुन्दरी आदि आठ हजार रानियों और बहुत सैन्या सहित उज्जैनसे विदा हुए। राजा पहुपाल आदि बहुतसे राजा भी उनको पहुंचानेको आये, और सबने शक्ति प्रमाण बहुमूल्य वस्तुयें भेंट की।

बहुत भूप इकठे भये, दियो भेंट बहु माल।
कोलाहल होवत भयो, चलौ राव श्रीपाल ॥१॥
श्रीपाल चलो मेरू हलो, जागो वासक शेष।
गजघण्टा गाजहि प्रबल, भाजहि अरि तज देश ॥२॥
बाजे निशान अरु सैन्य सब, गिनी कौनसे जाय।
कलमले दश दिगपाल हो, कंपे थर हर राय ॥३॥
धूल उड़ी आकाशमें, लोप भयो है भान।
खलबल हुई भुवि लोकमें, शब्द सुनिय नहि कान ॥४॥
अन्धकार प्रगटयो तहां, जुरी सेन गंभीर।
और कहा दयाहू दिशा, छूट गयो तृण नीर ॥५॥
सोधत गिरि खाई नदी, बन थल नगर अपार।
वश कर बहु नृप आइयो, चम्पापुरी मंझार ॥६॥

श्रीपालजी इस प्रकार बड़ी विभूति सहित स्वदेश चंपापुरके उद्यानमें आये, और नगरके चहुं ओर डेरे डलवा दिए। सो नगरनिवासी इस अपार सैन्यको देखकर हक्का-बक्कासे भूल गये, और सोचने लगे कि अचानक ही हम लोगोंका काल कहांसे उपस्थित हुआ है? पश्चात् श्रीपाल सोचने लगे, कि इसी समय नगरमें चलना चाहिये। ठीक है-बहुत दिनोंमें बिछुरी हुई प्यारी प्रजाको देखनेके लिए ऐसा कौन निष्ठुर राजा होगा, जो अधीर न हो जाय? सभी हो जाते हैं।

तब मंत्रियोंने कहा-'स्वामी! यकायक नगरमें जाना ठीक नहीं है। पहिले सन्देशा भेजिये, और यदि इस पर वीरदमन सरल मनसे ही आपको आकर मिले तो ही इस प्रकार चलना ठीक है अन्यथा युद्ध करना अनिवार्य होगा। क्योंकि राज्य हाथमें आ जाने पर कचित् पुरुष ही ऐसा होगा, जो चुपकेसे पीछा सौंप दे। इसलिए यदि उन्हें कुछ शल्य होगी तो भी प्रकट हो जायगी।"

श्रीपालको यह मंत्र अच्छा लगा, और तुरन्त दूतको बुलाकर सब बात समझाकर राय वीरदमनके पास भेजा। वह दूत शीघ्र ही राजा वीरदमनकी सभामें पहुंचा, और नमस्कार कर कहने लगा—

'हे महाराज! आज राजा श्रीपाल बहुत परिग्रह और विभव सहित आ पहुंचे हैं। सो आप चलकर शीघ्र ही उनसे मिलों। और उनका राज्य पीछा उनको सौंप दो।' यह सुनकर वीरदमन पहिले तो प्रसन्न हुआ, और श्रीपालजीकी कुशल पूछने लगा। जब दूतने सब वृत्तांत-घरसे निकलने, विदेश जाने, आठ हजार रानियोंके साथ विवाह करने और बहुतसे

राजाओंके वश करने आदिका कुछ समाचार कह सुनाया तब वीरदमन बोला—

'रे दूत ! तू जानता है, कि क्या राज्य और स्त्री भी कोई किसीको मांगनेसे देता है ? ये चीजें तो बाहुबलसे ही प्राप्त की जाती हैं । जिस राज्यके लिए पुत्र पिताको, भाई भाईको, मित्र मित्रको मार डालते हैं, क्या वह राज्य बिना रणमें शस्त्रप्रहार किए यों ही सहज भिक्षा मांगनेसे मिल सकता है ? क्या तूने नहीं सुना कि भरत चक्रवर्तीने राज्य हीके लिये तो अपने भाई बाहूबलि पर चक्र चलाया था । विभीषणने रावणको मरवाया था, कौरवों और पांडवोंमें महाभारत हुआ था, सो राज्य क्या, मैं यों ही दे सकता हूं ? नहीं, कदापि नहीं । यदि श्रीपालमें बल है तो रण मैदानमें आकर ले लेवे ?'

यह सुनकर वह दूत फिर विनय सहित बोला—हे राजन् ! ऐसी हठ करनेसे कुछ लाभ नहीं है । श्रीपाल बडा पुरुषार्थी वीर कोटीभट और बहुत राजाओंका मुकुटमणि महामंडलेश्वर राजा है । उसके साथ बडेर राजा हैं, अपार दलबल है, आपको उससे मिलने हीमें कुशल है । यदि आप उससे मिलेंगे तो वह न्यायी है, आपको पिताके तुल्य ही मानेगा, अन्यथा आप बडी हानि उठायेंगे ।' दूतके ऐसे वचनोंसे वीरदमनको क्रोध आ गया । वे लाल२ आंखें दिखाकर बोले—

रे अधम ! तुझे लज्जा नहीं । मेरे सामने ही ढिटाई करता जा रहा है । तू अभी मेरे बलको नहीं जानता है । मेरे सामने इन्द्र, चन्द्र नरेन्द्र, खगेन्द्र आदिकी भी कुछ सामर्थ्य नहीं है । फिर श्रीपाल तो मेरे आगे लडका ही है । उससे युद्ध ही क्या करना है ? बातकी बातमें उसका मान हरण करूंगा ।

तब दूत फिर बोला—हे राजन्! आप अपने मनका यह मिथ्याभिमान छोड दो। श्रीपाल राजाओंका राजा है। महीमंडलपर जितने बडे२ राजा हैं कि जिनके यहां आपके सरीखे दासत्व करते हैं उन सबने उनकी सेवा स्वीकार कर ली है। फिर तुम्हारी गिनती क्या है? वनमें बहुत जानवर होते है, परंतु एक हाथीकी चिंघाडसे वे कोई नहीं ठहर सकते और वैसे हजारों हाथी भी एक सिंहकी गर्जनासे दिशा विदिशाओंको भाग जाते हैं। हजारों सांपोंके लिए एक गरुड ही बस है। इसी प्रकार तुम जैसे करोडों राजा आ जावें तो भी उस भुजबलीके एक ही प्रहार मात्रमें निगर्व होकर शस्त्र छोड देंगे, अर्थात वह एक ही वारमें सबका संहार करनेको समर्थ हैं।

तब क्रोधकर वीरदमन बोले—अरे धीठ! तू मेरे सामनेसे हठ जा। मैं तुझे क्या मारूं? क्योंकि राजनीतिका यह धर्म नहीं है जो दूतका मारा जाय। तुझे मारनेसे मेरी शोभा नहीं है। तू मेरे ही सामने निन्दा और श्रीपालकी बडाई करता है। क्या मैं उसे नहीं जानता हूं वह मेरा ही लडका तो है। मैंने उसे कोदमें खिलाया हैं और कोढी होकर वह जब घरसे निकला था, तब रोता हुआ गया था। सो अब कहांका बलवान हो गया? और उसके पास इतनी सेना कहांसे आ गई, जो मुझसे लडनेका साहस करता है? जा जा, देख लिया तेरे उसका बल! उससे कह दे कि, क्यों अपनी हंसी कराता है?' तब वह दूत फिर बोला—

'देखो राजाजी! अभिमान मत करो। भरतने अभिमान किया तो चक्रवर्ती होकर भी बाहुबलिसे अपमानित हुये। रावणने मान किया, तो लक्ष्मणसे मारा गया। दुर्योधनका मान भीमने मर्दन किया। जरासिंधको श्रीकृष्णने मारा, इत्यादि बडे२ पुरुषोंका भी मान नहीं रहा तो तुम्हारी गिनती ही क्या है? इसलिए मैं फिर कहता हूं कि जो अपना भला चाहो तो

श्रीपालकी सेवा करो। क्योंकि यदि वह एक ही वीरको आज्ञा कर देगा तो वही वीर तुमका क्षणभरमें संहार कर डालेगा।'

तब दूतके ऐसे वचन सुनकर वीरदमन बोले—'इस दुष्टको खाल निकलवाकर भूसा भर दो, अर्थात् मार डालो। यह मेरे ही सामने बार२ मेरा निंदा करता है, और मनमें तनिक भी शंका नहीं करता।' तब मंत्री बोले—'महाराज दूतोंपर क्रोध नहीं करना चाहिए इनका स्वभाव ही यह है। ये तो अपने स्वामीके प्रेरे हुये निडर होकर कठिनसे कठिन शब्द बोलते हैं। इनको कोई नहीं मारता है। इनका साहस अपार होता है कि परचक्रमें जाकर भी निःशंक हो स्वामीके कार्यमें दत्तचित्त होते हैं ये लोग अपने स्वामीके कार्यके आगे राज-वैभवको भी तुच्छ गिनते हैं। ये लोग ऐसे शूरवीर होते हैं कि दुसरेकी सभामें जहां इनका कोई सहायक नहीं है, वहां पर भी अपने स्वामीका कोटि और परचक्रको निंदा करते हैं। इनके मनमें सदा अपने स्वामीका हित ही विद्यमान रहता है।

इसलिये महाराज! इस दूतको ऐसा इनाम देना चाहिये, कि जिसका बखान अपने स्वामी तक करता जाय, क्योंकि जिनके कुल परम्परासे राज्य चला आ रहा है, वे दूतोंको बहुत सुख देते हैं इसलिए आप भी यशके भागी होओ। यदि दूतका आप मारोगे तो अपवाद होगा, क्योंकि इन्हें कोई कभी नहीं मारता, ये चाहे जो कुछ क्यों न कहें। ये बेचारे स्वामीके बलसे गर्जते हैं।'

तब वीरदमनने दूतका सन्मान कर उसे बहुतसा द्रव्य दिया और कहा कि तुम श्रीपालसे जाकर कह दो, कि युद्धमें जिसकी विजय होगी वही राज्य करेगा। तब दूत नमस्कार कर वहांसे गया और जाकर श्रीपालसे सब वृत्तांत कह लिया कि वीरदमनने कहा है कि 'संग्राममें आकर जुटो और बल हो तो राज्य ले लो।'

श्रीपालका काका वीरदमनसे युद्ध

श्रीपालजीको दूतसे यह समाचार सुनते ही क्रोध उत्पन्न हो उठा। ये होठ डंसते हुए बोले–'क्या वीरदमनको इतना साहस हो गया है जो मेरे राज्यपर, मेरे द्वारा दिए हुये राज्यपर, इतना गर्जता है, और मुझे मेरा ही राज्य पीठा देनेके बदले युद्ध करना चाहता है? अच्छा ठीक है, अभी मैं इसके मानको मर्दन कर अपना राज्य छुड़ाता हूँ।'

यह सोचकर उसने तुरन्त ही सेनापतिको आज्ञा दी कि सैन्य तैयार करो। यहां आज्ञाकी देरी थी कि सैन्य तैयार हो गया। सब बडेर सामन्त बख्तर पहिरकर कठोर हथियार बांधकर वाहनोंपर चढ़ चले। हाथी, घोडे, प्यादे रथ इत्यादिके समूह यथानियम दिखाई देने लगे। शूरोंके चेहरे सूर्यके समान चमकने लगे। घोडोंकी हींस हाथियोंकी चिंघाड़ झूलोंकी झनकार, रथोंकी गडगडाहटसे आकाश गूंजने लगा। धूल उडकर बादलोंको शंका उत्पन्न करने लगी। बाजोंके मारे मेघगर्जना भी सुनाई नहीं देती थी।

इस तरह चतुरङ्ग दल सजकर तैयार हुए, और नगर बाहर रंगभूमिमें आकर जम गये। एक ओर श्रीपालकी सेना और दूसरी ओर काका वीरदमनकी सेना लग रही थी। दोनों परस्पर दाव घात विचारते थे। दोनों ओर बहुत दूर२ तक सिवाय मनुष्यों, घोडा, हाथी, रथ आदिके कुछ नहीं दिखाई देता था। शूरवीर रणधीर पुरुष अपने२ कुटुम्बी तथा स्त्रियोंसे क्षमा मांग२ कर और उन्हें धैर्य दे देकर चले जा रहे थे। उनकी स्त्रियां भी उनसे कहती थीं—

'हे स्वामिन्! यद्यपि जी तो नहीं चाहता कि आपको

छोड़े परन्तु नीति और धर्म कहता है कि नहीं, इस समय रोकना पाप है। इससे स्वामीद्रोह समझा जाता है। वर्षोंसे जिनका नमक खा रहे हैं, आज समय आनेपर अवश्य ही साथ देना चाहिये। समरमें जल कुछ अनिष्ट है, परन्तु वीर पुरुषोंका नाम पृथ्वीपर अमर रहता है।

आप जाओ, और तन, मनसे स्वामीका साथ दो। घरकी चिन्ता न करना। हम लोगोंका कर्म हमारे साथ है। आप कृतकार्य होनेकी चेष्टा करना, युद्धमें हारकर पीठ दिखाकर व पीठपर घाव खाकर पीछे घर मत आना। पीठ दिखाकर मुझे मुंह न दिखाना। कायरकी स्त्री कहलानेके बदले मुझे विधवा कहलाना अच्छा है। शूरवीरोंकी स्त्रियां विधवा होने अर्थात् युद्धमें उनका पति मर जानेपर भी वे विधवा होती है, क्योंकि उनके पतियोंका नाम सदैव जीता है। जाओ और जय प्राप्त करो। अपने घरानेमें स्यानोंने भी ऐसे ही नाम कमाया है। शरीर, स्त्री, पुत्रादि कोई काम नहीं देते। संसारमें कायरका जीना मरनेसे भी खराब है, क्योंकि एक-दिन तो मरना है ही क्योंकि यह विनाशीक शरीर कोटि यत्न करनेपर भी स्थिर नहीं रहेगा। तब बदनाम होकर बहुत जीनेसे नेकनामीके साथ शीघ्र ही मरजानेमें हानि नहीं है। अपघात नहीं करना चाहिये, और जीते जी कायर भी नहीं होना चाहिये। आज हर्ष है कि आप युद्धमें जा रहे हैं। आप कृतकार्य होंगे और मैं भी अपने आपको वीर पुरुषोंकी पत्नी कहलानेका सौभाग्य प्राप्त करूंगी।'

शूरवीर शूर स्त्रियां इस तरह सिखावन देती थीं कि कायरोंकी कायर स्त्रियां कहती थीं–'स्वामीन्! देखो, मैं कहती थी कि इस प्रकारकी नौकरी मत करो, यह मौतकी निशानी है। न मालुम कब अचानक आ बीतेगी। मेरा

कहना न माना, उसीका फल है। तुम तो चले, अब मैं क्या करूंगी? बालबच्चोंकी रक्षा कैसे होगी? मेरी यह तरुण अवस्था कैसे कटेगी? देखो, अभी कुछ नहीं गया है। चलो, मौका पाकर भाग चलें। वहीं जंगलमें रहकर दिन बितावेंगे। यह राज्य न सही अन्य सही। व्यर्थ क्यों मरते हो? और हम लोगोंकी हत्या शिर लेते हो। मैं तो नहीं जाने दूंगी फिर तुमको कसम है जो जाओ। मैं तुम्हारे जाते ही मर जाऊंगी। फिर तुम लौटे भी तो किससे मिलोगे? कहांका राजा, कहांकी प्रजा? अपना जी सुखी तो जहान सुखी।'

इस प्रकार स्त्रियां जहां तहां अपने पतियोंको समझाने लगीं। यह सुनकर कायरके दिल धड़कने लगे और शूरवीरोंके दिल फूलने लगे, इत्यादि।

इधर दोनों ओरसे रणभेरी बजा दी गई। रणके बाजे बजने लगे, जिसको सुनकर शूरवीर पतंगके समान उछलर कर प्राण समर्पण करने लगे। हाथीवाले हाथीवालोंसे, घोड़े-वाले घोड़ेवालोंसे, रथ रथसे, प्यादे प्यादोंसे इस तरह दोनों दल परस्पर भूखे सिंहके समान एक दूसरे पर टूट पड़े। तलवारोंकी खनखनाहट और चमक-दमकसे बिजली भी शर्मा जाती थी। मेघोंको शर्मानेके लिए तोपोंके गोले गड़गड़ाते हुए सूर्यको आच्छादित कर देते थे। वीरोंके शिर कट जानेपर भी कुछ समय तक रुण्ड मारर करता रहा था। लोहूकी नदी बहने लगी, जहांर रुण्ड मुण्ड दिखाई देने लगे जिसे देखकर वीरोंका जोश बढ़ने लगा और कायरोंके छक्के छूटने लगे।

इस तरह दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ, परन्तु दोनों-मेंसे कोई एक भी पीछे नहीं हटता था। जब दोनों ओरके मंत्रियोंने देखा, कि इन दोनोंमेंसे कोई भी नहीं हटता, दोनों पक्ष बलवान और दोनों भुजबली है, तब यदि ये दोनों परस्पर

ही युद्ध करें, तो ठीक है, दोनों ओरकी सेना व्यर्थ कटे। यह विचारकर मंत्रियोंने अपने२ स्वामियोंसे कहा कि आप राजा ही युद्ध करें, व्यर्थ सैन्य कटनेमें कुछ लाभ नहीं है। सो यह विचार दोनोंको पसंद आया और दोनों अपनी२ सेनाओंको रोककर परस्पर ही युद्ध करनेका निश्चय करके काका और भतीजा रणक्षेत्रमें आ डटे।

वीरदमन बोले—'आओ बेटे! हम तुम परस्पर ही लड़ लें। सैन्यका व्यर्थ संहार क्यों किया जाय?' तब श्रीपालजी हर्षित होकर बोले—बहुत ठीक काकाजी! परन्तु अब भी मैं तुम्हें समझाकर कहता हूं, कि दूसरेका राज्य छोड़ दो, इसीमें तुम्हारी भलाई है। क्योंकि मैं तुमको हमेशासे पिताके समान जानता रहा हूँ। सो क्या मैं अपने ही हाथसे तुम्हें मारूं? यह सुनकर वीरदमन क्रोधकर बोले—'अरे श्रीपाल! तू अभी लड़का है, तुझे युद्धका व्यवहार मालूम नहीं है। जब रणक्षेत्रमें आ ही गये, तो किसका पिता और किसका पुत्र? किसका भाई और किसका मित्र? यहां डरनेसे व सम्बन्ध बताकर कायरोंसे काम नहीं चलता। इसीसे मैंने पहिले ही तुझे समझाया था, परन्तु तू न माना और लड़कपन किया। सो अब क्या मेरे हाथसे तू बचकर जा सकेगा?' कभी नहीं, कभी नहीं' तब कोटीभटको भी क्रोध आ गया। वे बोले—

'रे वीरदमन! तेरे बराबर अज्ञानी कोई नहीं है, जो पराये राज्यपर गर्ज रहा है। देखो—कहा है कि जो परस्त्रीसे प्रीति करता है, जो मुंहसे गाली निकालता है, जो पराधीन भोजन करता है, जो ज्ञान रहित तप करता है, जो पराये धनपर सुख भोगता है, सांपसे मित्रता करता है जो स्त्रीपर भरोसा रखता है, जो अपने मनकी बात सबसे कहता है, जो धनी होकर पराधीन रहता है, जो बिना द्रव्य दानी बनता है, जो वेश्यासे

प्रीति करता है, जो किसी न किसी दिन बहुत धोखा खाता है, जो कुशील होकर सेवन करता है, जो भंग पीकर बुद्धिमान बनता है, जो पतित होकर योंही ठौर२ वादविवाद करता है, जो हंस मानसरोवर छोड देता है, जो वेश्या लज्जावती बन जाती है, जो जूवामें सच बोलता है, जो दूसरेकी संपत्तिपर ललचाता है, उससे अधिक मूख संसारमें कौन है ?'

वीरदमनको उक्त नीति सुनकर लज्जा तो अवश्य हुई, परंतु वह उस समय लाचार था, वीर पुरुष युद्धमें नहीं हटते इसलिए उसने धनुष उठा लिया। और ललकार कर बोला—

'बस रहने दे तेरी चतुराई। अब कायरोंके बातें बनानेका समय नहीं है। यदि कुछ बाहुबल है तो सामने आ।' तब तो श्रीपालसे नहीं रहा गया वे कानके पास धनुष खींचकर सन्मुख हो गये। सो जैसे अर्जुन और कर्ण, रावण और लक्ष्मण, तथा भरत और बाहुबलीका परस्पर युद्ध हुआ था, वैसा ही होने लगा। जब सामान्य हथियारोंसे बहुत युद्ध हुआ और कोई किसीको न हरा सका, तब शस्त्र छोड़कर मल्लयुद्ध करने लगे, सो बहुत समय तक योंही लिपटते तो रहे, परन्तु जब बहुत देर हो गई, तब श्रीपालने वीरदमनको दोनों पांव पकडके उठा लिया और चाहा कि पृथ्वीपर दे मारे परन्तु दया आ गई, इसलिये धीरेसे पृथ्वीपर लिटा दिया। सब ओरसे 'जय-जय' शब्द होने लगे। वीरोंने श्रीपालके गलेमें जयमाल पहिनाई और बोले—

राजन् ! तुम दयालु हो। पश्चात् जब श्रीपालने वीरदमनको छोड दिया तब वीरदमन बोले—'हे पुत्र ! यह ले, अपना राज्य सम्हाल। मैंने तेरा बल देखा। तू यथार्थमें महाबली है। हमारे इस वंशमें तेरे जैसे शूरवीर ही होने चाहिये।'

तब श्रीपाल बोले-'हे तात ! यह सब आपका ही प्रसाद है । आपकी आज्ञा हो सो करूं ।'

यह सुनकर वीरदमन बोले-पुत्र ! ठीक है, अब मेरा यह विचार है कि तू राज्यभार ले और मैं जिन दीक्षा लूं जिससे यह भवभ्रमण मिटे ।' पश्चात् आनंद भेरी बजने लगी । सबका भय दूर हुआ । जहां तहां मंगल गान होने लगे । वीरदमनने श्रीपालको राज्याभिषेक कराकर पुनः राज्यपद दिया और बोले—

हे वीरवर ! अब तुम सुखसे चिरकालतक राज्य करो । और नीति न्यायपूर्वक पुत्रवत् प्रजाका पालन करो । दुःखी दरिद्रों पर दयाभाव रखो और मेरे उपर क्षमा करो । जो कुछ भी मुझसे तुम्हारे विरुद्ध हुआ हैं सो सब भूल जाओ । अब मैं जिनदीक्षारुपी नावमें बैठकर भवसागरको तिरूंगा ।

इस तरह वीरदमन अपने भतीजे श्रीपालको राज्य देकर आप वनमें गये और वस्त्राभूषण उतारकर निज हस्तोंसे केशोंका लोंच किया । रागद्वेषादि चौदह अंतरंग और क्षेत्र, वास्तु आदि दश बाह्य ऐसे सब चौबीस प्रकारके परिग्रहको त्याग कर पंच महाव्रत धारण किये, और घोर तपश्चरण द्वारा चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया, और बहुत जीवोंको धर्मोपदेश देकर उन्हें संसारसे पार किया । पश्चात् शेष अघातियां कर्मोंको भी आयुके अन्त समय निःशेष कर परमधाम-मोक्षको प्राप्त किया ।

धर्म बडो संसारमें, धर्म करो नरनार ।
धर्म योग श्रीपालजी, पाई लच्छ अपार ॥१॥
वीरदमन मुक्ति हिं गये, धर्म धारकर सार ।
आठ सहस रानीनकी, सैना भई पटनार ॥२॥
धर्मयोग जिय-सुख लहे, योग योग शिवसार ।
'दीपचन्द' नित संग्रहो, धर्म पदारथ सार ॥३॥

श्रीपालका राज्य करना

अशुभ कर्म भयो दूर सब, शुभ प्रगटयो भरभूर ।
राज्य करे विलसे विभव, श्रीपाल बलशूर ॥
कीनों यश भूवि लोकमें, दुर्जनके उर साल ।
सकल जीव रक्षा करी, महाराज श्रीपाल ॥

इस प्रकार राजा श्रीपाल आठ हजार रानियों सहित इन्द्रके समान सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे। देशदेशमें इनकी प्रख्याति बढ गई। अनेक देशोंके बडेर राजा इनके आज्ञाकारी हो गये। जो राजा लोग अनेक द्वीपों और देशोंसे साथ पहुँचाने आये थे, सो सबको यथायोग्य सन्मानपूर्वक विदा किये। और प्रजाका प्रीतिसे पुत्रवत् पालन करने लगे। नित्यप्रति चार प्रकारके संघको चारों प्रकारके दान भक्तिभावसे देने लगे। दुःखित तो कोई नगरमें बुभुक्षित ही क्या राज्यभरमें कठिनतासे मिलता था। इत्यादि राज्यवैभव सब कुछ था और इनको किसी बातकी कमी नहीं थी, तो भी ये सब सुखके मूल जिनधर्मको नहीं भूलते थे। नित्य नियमानुसार बधमान रूपसे षट् आवश्यकों, देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दानमें यथेष्ट प्रवृत्ति करते थे।

इस तरह राज्य करते हुए श्रीपालका सुखसे समय जाता था। कितनेक दिनों बाद मैनासुन्दरीको गर्भ रहा, उसे अनेक प्रकारके शुभ दोहले उत्पन्न हुए और श्रीपालने उन सबको पूर्ण किये। इस तरह जब दश महिने हो गये, तब शुभ घड़ी मुहूर्तमें चन्द्रमाके समान उज्जवल कांतिका धारी पुत्र हुआ। पुत्रजन्मसे सर्व कुटुम्ब व प्रजाको अत्यानंद हुआ, और पुत्रजन्मोत्सवमें बहुत द्रव्य खर्च किया गया। याचक जन निहाल कर दिये गये। पश्चात् ज्योतिषीको बुलाकर गृहादिक ब्योरा पूछा,

तो उसने बहुत सराहना करके कहा कि यह पुत्र उत्तम लक्षणोंवाला है, इसका नाम धनपाल है।

इस तरह दूसरा महीपाल तीसरा देवरथ, और चौथा महारथ ये चार पुत्र मैनासुन्दरीके और हुए। रयनमंजूषाके सात पुत्र हुए, गुणमालाके पांच पुत्र हुए, और सब स्त्रियोंसे किसीके एक, किसीके दो। इस प्रकार महाबली, धीरवीर गुणवान् कुल बारह हजार पुत्र हुए। वे नित्यप्रति दोयजके चन्द्र समान बढ़ने लगे।

अहहा! देखो, धर्मका प्रभाव! इससे क्या नहीं हो सकता! श्रीपालजी धर्मके प्रसादसे सुखपूर्वक काल व्यतीत करते थे। एक दिन श्रीपालजी सिंहासनपर बैठे थे, पास ही बांई ओर मैनासुन्दरी भी बैठी थी, बन्दीजन विरद बखान कर रहे थे, सेवकजन चमर ढोर रहे थे, नृत्यकारिणी नृत्य कर रही थी, गीत वादित्र बज रहे थे, विनोद हो रहा था, कविजन पुराण पढ़ रहे थे, चारों ओर कुंकुम, चंदन, कस्तूरी, कपूर आदि पदार्थोंकी सुगंधा फैल रही थी, अबीर गुलाल उड़ रहा था। ताम्बूल, सुपारी, इलायची, जावित्री, लौंग आदि बंट रहे थे। कहीं आम, जाम, सीताफल, नारियल, केला आदि फल और किसमिस, द्राक्ष, छुआरा, चिरोंजी, काजू, पिस्ता, अखरोट, अंगुर आदि सब बंट रहे थे। इस प्रकार राजा क्रीड़ा कर रहा था कि वनमाली आया, और वह नमस्कार कर छह ऋतुके फलफूल राजाको भेंट करके नम्र हो बोला—

'हे स्वामिन्! इस नगरके वनमें समीप ही श्री १००८ केवली मुनिराजका आगमन हुआ है! जिनके प्रभावसे सब ऋतुओंके फलफूल साथ ही फूले और फल आ गये हैं। सूखे सरोवर भर गये हैं। जाति-विरोधी जीव परस्पर वैर

छोडकर विचर रहे है। गायका बच्चा सिंहनीके स्तनसे लग जाता है। सांप नेवलाको खिलाता है। चूहा बिल्लीसे क्रीड़ा करता है। चहुँ ओर शिकारियोंको शिकार भी नहीं मिलता है। हे नाथ! ऐसा अतिशय हो रहा है।'

यह सुनकर श्रीपालजी सिंहासनसे उतरे, और वहींसे प्रथम ही सात पद चलकर परोक्ष रीतिसे नमस्कार किया और वस्त्राभूषण जो पहिरे थे सो सब उतारकर वनमालीको दे दिए तथा और भी बहुत इनाम उसको दिया।

पश्चात् नगरमें आनन्दभेरी बजवा दी, कि सब लोग महामुनि वंदनाको चलें। नगरके बाहर वनमें श्री महामुनि आये हैं। पश्चात् अपना चतुरंग सैन्य सजाकर वे बड़े उत्साहसे प्रफुल्लित चित्त हो रनवास और स्वजन पुरजनोंको साथ लेकर वन्दनाको चले। कुछ ही समयमें उद्यानमें पहुँचे, जहांकी शोभा देखकर मन आनन्दित होता था। मंद सुगंधि पवन चल रही था, मानों वसन्तऋतु ही हो।

जब निकट पहुंचे तो श्रीपालजी वाहनसे उतरकर यहां वहां देखने लगे, तो कुछ ही दूर सन्मुख अशोक वृक्षके नीचे सब दुःखको नाश करनेवाले महामुनिराज विराजमान थे, सो देखते ही श्रीपालके हर्षकी सीमा न रही। वे श्रीगुरुको नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा देकर स्तुति करने लगे—

धन्य धन्य तुम श्रीमुनिराज, भवजल तारन तरन जहाज।
एक परम पद जाने सोय, चेतन गुण अराधे जोय॥
राग द्वेष नहिं जाके चित्त, समता केवल पाले नित्त।
तीन गुप्ति पालन परमत्थ, रत्नत्रय धारण समरत्थ॥
तीन शल्य मेंटन शिवकंत, ज्ञान धरण गुण वल्लभ संत।
भवजल तारण तरण जहाज, पंच महाव्रत धर मुनिराज॥

मकरध्वज मारो धर पाद, जहाँ स्वयं भावण गुण राय ।
आठ कर्म नाशा मद हने, आठ सिद्ध गुण धारण धर्म ।।
पूरण ब्रह्मचर्य प्रतिपाल, दश लक्षण गुण धरन दयाल ।
द्वादशतप धारो जिय नाहि, द्वादशांग भाषण जो आहि ।।
तेरा विधि चारित्र प्रमाण, पाले जो मल धरन सुजान ।
सहें परीषह बाईस सोय, इनके शत्रु मित्र सम होय ।।
कहां तक कहूं आप गुणमाल, द्वय कर जोड़ नमैं श्रीपाल ।

इस तरह सब पुरजन और रनवास सहित श्रीपाल स्तुति करके श्रीगुरुके चरणकमलके समीप हर्षित होकर बैठे। और भी सब लोग यथायोग्य स्थानपर बैठे। पश्चात् राजा बोले--स्वामिन्! कृपा कर मुझे संसारसे पार उतारनेवाले धर्मका उपदेश दीजिये।'

तब श्रीगुरु बोले-हे राजन्! तुमने यह अच्छा प्रश्न किया। अब ध्यानसे सुनो। वस्तुका जो स्वभाव है, वही धर्म है। सो इस आत्माका स्वभाव शुद्ध चैतन्य अर्थात् अनंतदर्शन, ज्ञानस्वरूप है और अमूर्तिक है, परन्तु यह अनादि कर्मबन्धके कारणसे चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमण करता हुआ पर्याय-बुद्धि हो रहा है। इसलिये इसको परपदार्थोंसे भिन्न अनंत-दर्शन, ज्ञानमयी, सच्चिदानंदस्वरूप, एक अविनाशी, अखण्ड, अक्षय, अव्याबाध, निरंजन, स्वयं बुद्ध, परमात्म स्वरूप, समयसार निश्चय करना, सो तो सम्यग्दर्शन है। और न्यूनाधिकता तथा संशय विपर्यय और अनध्यवसायादि दोषोंसे रहित जो वस्तुको सूक्ष्म भेदों सहित जानना सो सम्यक्ज्ञान है, और स्वस्वरूपमें लीन हो जाना सो सम्यक्चारित्र है।

इस तरह निश्चयरूपसे तो धर्मका स्वरूप यह है। सो व्यवहार बिना निश्चय होता नहीं। क्योंकि व्यवहार धर्म

निश्चय धर्मका कारण है। इसलिए व्यवहारसे सप्त तत्वोंका श्रद्धान सो दर्शन, अथवा इनका जो कारण सत्यार्थ देव, गुरु और शास्त्रका श्रद्धान् सो सम्यग्दर्शन है, और पदार्थोंको यथार्थ जानना सो ज्ञान है, और इनकी प्राप्तिके उपायमें तत्पर होना, सो सम्यक्चारित्र है। सो चारित्र दो प्रकार है–सर्वथा त्यागरूप (मुनिका), और एकदेश त्यागसे (गृहस्थका) पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्तिरूप मुनिका पंचाणुव्रत तथा सप्त शीलरूप श्रावकका होता है।

श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएं है जिनमें शक्ति अनुसार उत्तरोत्तर कषायोंकी मंदतासे जैसे२ त्यागभाव बढ़ता जाता है वैसी ही उपर उपरकी प्रतिमाओंका पालन होता जाता हैं और मुनिका व्रत बाह्य तो एक ही प्रकार है, परन्तु गुणों तथा गुणस्थानोंकी परिपाटीसे अन्तरङ्ग भावोंकी अपेक्षा अनेक प्रकार है। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित व्रत पालें, और आयुके अन्तमें दर्शन ज्ञान चारित्र और तप इन चार आराधनाओंपूर्वक सल्लेखना मरण करें।'

इस प्रकार संक्षिप्तसे धर्मोपदेश दिया जिसको सुनकर राजाको परम आनंद हुआ। पश्चात् श्रीपालजीने विनयपूर्वक पूछा–'हे परम दयालु ज्ञानसूर्य प्रभो! कृपाकर मेरे भवान्तर कहिये, कि किस कर्मके उदयसे मैं कोढी हुआ? किस पुण्यकर्मके उदयसे सिद्धचक्र व्रत लिया। किस कारण समुद्रमें गिरा? किस पुण्यसे तिरकर बाहर निकला? किस कर्मसे भांडोंने मेरा बिगोवा किया? किस कारणसे वह मिट गया। और किस कारण मैनासुन्दरी आदि बहुतसी रूप व गुणवती स्त्रियां और विभूति पाई?' इत्यादि।

श्रीपालके भवान्तर

श्री मुनि बोले–हे राजन्! सुनो। इस जंबूद्वीपके दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र है। उसके आर्य खंडमें एक रत्नसंचयपुर नामका नगर मनोहरमणीक वन, उपवन, तडाग, नदी, कोट, खाई आदि बडेर उत्तंग महलोंसे सुसज्जित था। उसके राजा श्रीकंठ विद्याधर महाबलवान और चतुरंग सैन्यका स्वामी था। उसके यहां सब रानियोंमें प्रधान पटरानी श्रीमती थी। सो वह महारूपवती, गुणवती और धर्मपरायणता थी। नित्य-प्रति चार संघको भक्तिपूर्वक आहारादिक दान देती थी। एक दिन राजा रानी सहित श्री जिनमंदिर गया और जिन देवकी स्तुति वन्दना करके पीछे फिरा तो वहां परम दिगम्बर मुनिराजको विराजमान देखकर नमस्कार किया, और समीप बैठा। श्रीगुरुने धर्मवृद्धि दी और संसारसे पार उतारनेवाले जिनधर्मका उपदेश दिया। इससे राजा आदि बहुत लोगोंने यथायोग्य व्रत लिये और अपने२ आवास स्थानोंको आये व यथायोग्य धर्म पालने लगे।

पश्चात् तीव्र मोहके उदयसे राजाने श्रावकके व्रतोंको छोड़ दिया। और लक्ष्मी, ऐश्वर्य, रूप, कुल, बल और तरुणावस्थाके मदमें उन्मत्त होकर मिथ्यात्वियोंके बहकानेसे वह मिथ्यादेव, धर्म और गुरुकी सेवा करने लगा, तथा जैनधर्मका निन्दक हो गया। एक दिन वह राजा अपने सातसौ वीरोंको साथ लेकर वनक्रीडाको गया था, सो वहां एक गुफामें बाईस परिषहके सहनेवाले ध्यानारूढ एक मुनिराजको देखा, जिसका शरीर बहुत क्षीण (दुर्बल) हो रहा था, धूलसे भर रहा था और डांस मच्छर आदि लग रहे थे।

वे ऐसे निश्चिल विराजमान थे कि जिनके पास सूर्यका

उजेला भी पहुंच नहीं सकता था। सो राजाने उन महा-मुनिको देखकर अपशुकन माना, और 'कोढ़ी है कोढ़ी है, ऐसा कहकर समुद्रमें गिरवा दिया। परन्तु मुनिका मन किंचित् भी चलायमान नहीं हुआ। पश्चात राजाको कुछ दया उत्पन्न हुई, सो फिर पानीमेंसे मुनिको निकलवा लिया, और अपने घर आया पश्चात् कितने दिनों बाद राजा फिरसे वनक्रीडाको गया, और सामने एक क्षीण शरीर, धीरवीर, परम तत्वज्ञानी मुनिको आते हुए देखा। वे रत्नत्रयके धारी महामुनिराज एक मासके उपवासके अनन्तर नगरकी ओर पारणा (भिक्षा) के लिये जा रहे थे। सो राजाने क्रोधित होकर मुनिसे कहा—

'अरे निर्लज्ज! बेशरम! तूने लज्जाको कहां छोड़ दी है, जो नंगा फिर रहा है? भोला शरीर, भयानक रूप बनाकर डोलता है। 'मारो! मारो! अभी इसका सिर काट लो' ऐसा कह खड्ग लेकर उठा और मुनिको बडा उपसर्ग तथा हास्य किया। पश्चात् कुछ दया उत्पन्न हुई, तब उनको छोडकर अपने महलको हो चला आया। ऐसे मुनिको बारंबार उपसर्ग करनेसे उसने बहुत पाप बांधा।

एक दिन किसी पुरुषने आकर यह सब मुनियोंके उपसर्ग करनेका समाचार रानी श्रीमतीसे कह दिया, सो सुनते ही रानीको बडा दुःख हुआ। यह बार२ सोचने लगी—'हे प्रभो! मेरा कैसा अशुभ कर्म उदय आया जो ऐसा पाप करनेवाला भर्तार मुझे मिला। कर्मकी बडी विचित्र गति होती है। यह इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग कराया करता है। सो अब इसमें किसको दोष दूं? मैंने जैसा पूर्वमें किया था वैसा पाया।'

इस तरह रानीने बहुत कुछ अपने कर्मोंकी निंदा गर्हा की और उदास होकर पलंगपर जा पडी। इतनेमें राजा आया

और सुना कि रानी उदास पड़ी है। तुरन्त ही रानीके पास आकर पूछने लगा–'प्रिये ! तुम क्यों उदास हो ? जो कुछ कारण हो सो मुझसे कहो। ऐसी कौन बात अलभ्य है जो मैं प्राप्त नहीं कर सकता हूँ ?' परन्तु रानीने कुछ भी उत्तर न दिया। वैसी ही मुरझाये हुए फूलके समान रह गई। उसे कुछ भी सुध न रही। तब एक दासी बोली—'हे नरनाथ ! आपने श्रावकके व्रत छोड दिये और मुनिकी निन्दा की। उन्हें घानीमें पिरवा दिया और बहुत उपसर्ग किया है सो सब समाचार किसीने आकर रानीसे कह दिये हैं। इसीसे वे दुःखित होकर मुरझाकर पड रही है।

राजा यह बात सुन बहुत लज्जित होकर अपनी भूलपर विचारने और पश्चाताप करने लगा। पश्चात मधुर वचनोंसे रानीको समझाने लगा–'हे प्रिये ! मुझसे निःसंदेह बड़ी भूल हुई। यथार्थमें मैंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे मिथ्यागुरु, देव, धर्मको सेवन किया, और उसीकी कुशिक्षासे सुमतिको छोड़कर कुमतिको ग्रहण किया, मैं महापापी हूं। मैंने मिथ्या अभिमानके वश होकर बड़े२ अनर्थ किये हैं। मैं अपने आप ही अधकूपमें गिर गया। प्रिये। अब मुझे नरकपंथसे बचाओ। मैं अपने लिए कर्मोंकी निन्दा करता हूँ, उनपर पश्चाताप करता हूं, और उनसे छूटनेकी इच्छासे श्री जिनदेवसे बार२ प्रार्थना करता हूं।' तब रानी दयावन्त हो बोली—

'महाराज ! आपने धर्मकथाको छोडकर मिथ्यात्वसेवन किया, सो भला नहीं किया। आपने धर्माधर्मका पहिचान बिना किए ही मुनिराजको कष्ट दिया। देखो, धर्मशास्त्रमें कहा है कि जो कोई जिनशासनके व्रतोंकी, जिनगुरु, जिनबिंब व जिनधर्मकी निंदा करता है सो निश्चयसे नरक जाता है। वहांपर मारण, ताडन छेदन, भेदन, शूली सिंहासनादि दुःखोंको

भोगता है । वहां कोई शूलोपर चढ़ाते हैं, घाणीमें पेलते हैं, संडासीसे मुख फाडकर तांबा, शीशा गला गलाकर पिलाते हैं । लोहेकी पुतली लाल२ गरमकर शरीरसे भिड़ा देते है, इत्यादि नाना प्रकारके दुःख भोगना पडते हैं । इसलिये हे स्वामिन् ! अब कोई पुण्यके उदयसे आपको अपने अशुभ कृत्योंसे पश्चात्ताप हुआ हैं, तो श्री मुनिके पास जाकर जिन-व्रत लो, जिससे अशुभ कर्मोंकी निर्जरा हो ।'

यह सुनकर राजा, रानीके कहे अनुसार जिन मंदिरमें गया और प्रथम ही जिनदेवकी स्तुति की । पश्चात् श्रीगुरुको नमस्कार करके बैठा और बोला—'हे दीनदयालु प्रभो ! मैंने बड़ा पाप किया है । अब आपके शरणमें आया हूं सो मुझे अब नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये ।'

तब श्रीगरुने धर्मका स्वरूप समझाकर कहा—राजन् ! तू सम्यग्दर्शनपूर्वक श्री सिद्धचक्रका व्रत पाल, इससे तेरे अशुभ कर्मोंका क्षय होगा, यह कहकर व्रतकी विधि बताई । सो राजाने मिथ्यात्वको त्यागकर सिद्धचक्र व्रत स्वीकार किया और सम्यक्त्व ग्रहण किया, तथा पंच अणुव्रत और सप्त शील (तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत) अंगीकार किये । फिर अपने स्थानको आया, और उसी समयसे धर्मध्यानमें सावधान हो विधिपूर्वक व्रत पालने लगा । नित्यप्रति जिनेन्द्र देवकी अष्ट प्रकारसे पूजा करता, व दान देता था ।

जब आठ वर्ष पूर्ण हो गये, तब उसने विधिपूर्वक भाव सहित उद्यापन किया और अन्त समयमें सन्यास मरण कर स्वर्गमें जाकर देव हुआ, और रानी श्रीमती भी सन्यासमरण कर स्वर्गमें देवी हुई । और भी सब यथायोग्य व्रतके प्रभावसे मरणकर अपने२ कर्मानुसार उत्तम गतिको प्राप्त हुए । सो

वह (राजा श्रीकंठका जीव) स्वर्गसे चलकर तू श्रीपाल हुआ है और रानी श्रीमतीका जीव चयकर यह मैनासुन्दरी हुई।

इसलिये हे राजन्! तूने जो सातसौ वीरों सहित मुनिराजको 'कोढ़ी२ कहकर ग्लानि की थी, उसीके प्रभावसे तू उन सब सखों सहित कोढ़ी हुआ। और मुनिको पानीमें गिराया, उससे तू भी सागरमें गिरा फिर दयालु होकर निकाल लिया, इसीसे तू भी तिरकर निकल आया। तूने मुनिको 'भ्रष्ट२' कहकर निन्दा की थी, इसीसे भांड़ोंने तेरा अपवाद उड़ाया। तूने मुनिके मारनेको कहा था, इसीसे तू शूलीके लिए भेजा गया, और दुःख पाया। इसलिये हे राजा! मुनिकी तो क्या, किसी भी जीवकी हिंसा दुःखकी देनेवाली होती है, और मुनिघातक तो सातवें नरक जाता है। तूने पूर्वजन्ममें श्रावकके व्रतों सहित सिद्धचक्र व्रतका आराधन किया था, जिससे यह विभूति पाई, और पूर्वभवके संयोगसे ही श्रीमतीजीके जीव मैनासुन्दरी और इस पवित्र सिद्धचक्र व्रतका लाभ तुझे हुआ।

यह सुनकर श्रीपालने मुनि महाराजकी बहुत स्तुति वंदना की और अपने भवांतरकी कथा सुनकर पापोंसे विशेष भयभीत हो धर्ममें दृढ हुआ। पश्चात् श्रीगुरुको नमस्कार कर निज महलोंको आया और पुण्ययोगसे प्राप्त हुए विषयोंको न्यायपूर्वक भोगने लगा।

इस तरह बहुत दिनतक इन्द्रके समान ऐश्वर्यधारी श्रीपालने इस पृथ्वी पर नीतिपूर्वक राज्य किया। आपके राज्यमें दीनदुःखी कोई भी नहीं मालूम होते है।

राजा श्रीपालका दीक्षा लेना

एक दिन राजा श्रीपाल सुखासनसे बैठे हुये दिशाओंका अवलोकन कर रहे थे कि उल्कापात हुआ (बिजली चमकी), उसे देखकर सोचने लगे—'अरे ! जैसे यह बिजली चमककर नष्ट हो गई, ऐसे ही एक दिन ये सब मेरे वैभव, तन, धन, यौवनादि भी विनश जायंगे । देखो संसारमें कुछ भी स्थिर नहीं है । मेरी ही कई अवस्थायें बदल गई हैं । अब अचेत रहना योग्य नहीं है । इन विषयोंके छोडनेके पहिले ही मैं इन्हें छोड दूं, क्योंकि जो इन्हें न छोडूंगा तो भी ये नियमसे मुझे छोड ही देंगे । तब मुझे दुःख होगा और आर्तध्यानसे कुगतिका पात्र हो जाऊंगा । इस प्रकार विचारने लगे—

विश्वमें जो वस्तु उपजी, नाश तिनका होयगा ।
तूं त्याग इनहि अनित्य, लखकर नहीं पीछे रोयगा ॥

अनित्य भावना ॥

मृत्युके समय मेरा कोई भी सहाई न होगा । किसके शरण जाऊंगा ? कोई भी बचानेवाला नहीं है ।

देव इन्द्र नरेन्द्र खगपति, और पशुपति जानिये ।
आयु अन्तहि मरें सब ही, शरण किसकी ठानिये ॥

अशरण भावना ॥

संसार दुःखरूप जन्म मरणका स्थान है ।

पिता मर निज पुत्र होवे, पुत्र मर भ्राता सही ।
परिवर्तरूपी जगतमांही, स्वांग बहु धारे यही ॥

संसार भावना ॥

इसमें जीव अनादिकालसे अकेला भटकता है।

स्वर्ग नर्क हि एक जावे, राज इक भोगे सही।
कर्मफल सुखदुःख सब ही, अन्यको बांटे नाहीं॥
एकत्व भावना।

कोई किसीका साथी नहीं है।

देह जब अपना न होवे, सेव जिह नित ठानिये।
तो अन्य वस्तु प्रतक्ष पर हैं, किम्हें निजकर मानिये॥
अन्यत्व भावना।

मिथ्यात्वके उदयसे यह इस घृणित शरीरमें लोलुप हुआ विषय सेवन करता है।

मलमूत्र आदि पुरीष जामें, हाड मांस सु जानिये।
अति देह गेह जु चाम लपटी, महा अशुचि बखानिये॥
अशुचि भावना।

और रागद्वेष करके कर्मोंको उत्पन्न करता है।

मन वचन काय त्रियोग द्वारा, भाव चंचल हो रहे।
तिनसे जु द्रव्यरु भाव आस्रव, होय मुनिवर यों कहे॥
आस्रव भावना।

यदि यह मन, वचन, कायको रोककर अपने आत्मामें लीन हो तो कर्म न बधे।

योगको चंचलपनों, रोके जु चतुर बनायके।
तब कर्म आवत रुकें निश्चय, यह सुनो मन लायके॥
संवर भावना।

व्रत, तप, चारित्र धारण करे तो पूर्व संचित कर्म भी क्षय हो जावें।

व्रत समिति पंच अरु गुप्ति तीनों, धर्म दश उर धारके ।
तप तपें द्वादश सहें परिषह, कर्म डारें जारके ॥

निर्जरा भावना ।

तो इस अनादि मनुष्याकार लोक जो, तीन भागोंमें (ऊर्ध्व अधः और मध्य) विभाजित है और ३४३ घन राजूका क्षेत्रफल वाला है, के भ्रमणसे बच सकता है ।

अधो ऊरध मध्य तीनों, लोक पुरुषाकार हैं ।
तिनमें सुजीव अनादिसे, भरमें भरें दुःखभार हैं ।

लोक भावना ।

संसारमें और सब वस्तुयें मिलना सहज है और अनंतबार मिली हैं, परन्तु रत्नत्रय ही नहीं मिला है ।

विश्वमें सब सुलभ जानो, द्रव्य अरु पदवी सही ।
कह 'दीपचन्द्र' अनन्त भवमें, बोधिदुर्लभ है यही ॥

बोधिदुर्लभ ।

सो ऐसे रत्नत्रय धर्मको पाकर यह जीव अवश्य ही संसार भ्रमणसे बच सकता है ।

कल्पतरु अरु कामधेनु, रत्न चिंतामणि सही ।
यांचे विना फल देत नाहीं, धर्म हैं बिन इच्छ ही ॥

धर्म भावना ।

इस प्रकार संसारके स्वरूपका विचारकर तुरन्त ही वे अपने ज्येष्ठ पुत्र धनपालको बुलाकर कहने लगे—'हे पुत्र ! अब मुझसे राज्य नहीं हो सकता, अब मैं अनादिकालसे खोई हुई असल संपत्ति (जो स्वात्मलाभ) प्राप्त करूंगा । तुम इस राज्यको सम्हालो ।' तब पुत्र बोला—

'हे पिता ! मैं अभी बालक हूँ। मैंने निश्चिंत होकर अपना काल खेलनेमें ही बिताया है। राज्यकार्य मुझे कुछ भी अनुभव नहीं है। सो यह इतना बड़ा कार्य मैं कैसे करूंगा ? आपके बिना मुझसे कुछ न हो सकेगा ?'

तब राजा बोले-हे पुत्र ! सदासे यही नीति चली आई है कि पिताका राज्य पुत्र ही करता है, सो तू सब लायक है। फिर क्यों चिंता करता है ? राज्य ले और प्रेमपूर्वक नीतिसे प्रजाको पाल।' जब पुत्र धनपालने आज्ञाप्रमाण राज्य करना स्वीकार किया तब श्रीपालजीने कुंवर धनपालको राजपट्ट देकर तिलक कर दिया, और भले प्रकार शिक्षा देकर कहा—

हे पुत्र ! अब तुम राजा हुए। यह प्रजा तुम्हारे पुत्रके समान है। 'यथा राजा तथा प्रजा' होती है, इसलिये मिथ्यात्वका सेवन नहीं करना। परधन और परस्त्रियोंपर दृष्टि नहीं डालना। अपना समय व्यर्थ विकथाओंमें नहीं बिताना। इन्द्रियोंको न्यायविरुद्ध प्रवर्तन करनेसे रोकना, परोपकारमें दत्तचित्त रहना।' इत्यादि वचन कहकर आप वनकी ओर चले गये।

आपके जाते ही प्रजामें हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे कि अब 'चंपापुरकी शोभा गई। अहा ! ये महाबली दयावंत प्रजापालक महाराजा कहां चले गये, जिनके राज्यमें हम लोगोंने शांतिपूर्वक जीवनका आनंद भोगा। महाराज क्यों चले गये ? क्या हम लोगोंसे उनकी सेवामें कुछ कमी हो गई ? या और कोई कारण हुआ ? राजा हम

लोगोंको क्यों छोड गये ? इत्यादि कोई कुछ कोई कुछ कहने लगे, तब राजा धनपालने सबको धैर्य दिया । मैनासुन्दरी आदि आठ हजार रानियोंने जब स्वामीके वन जानेके समाचार सुने, तो वे भी साथ हो गईं, और कुन्दप्रभा भी साथ हुई । और बहुतसे पुरजन भी साथ होकर वनमें गये । सो जब कोटीभट्ट वनमें पहुंचे, तो वहांपर महामुनिश्वर बैठे देखे, उनको नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे नाथ ! मैं अनादिकालका दुःखिया हूँ, सो अब कृपाकर मुझे भवसागरसे निकालिये अर्थात् जिनेश्वरी दीक्षा दीजिये ।

तब श्रीगुरुने कहा—'हे वत्स ! यह तुमने अच्छा विचार किया है । जन्म मरणकी सन्तति इसीसे छूटती है, सो तुम प्रसन्नता पूर्वक जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करो । तब श्रीपालने सब जनोंसे क्षमा कराकर तथा आपने भी सबको क्षमाकर दीक्षा लेनेके लिए वस्त्राभूषण उतार कर श्रीगुरुको नमस्कार किया । श्रीगुरुने इन्हें दर्शन ज्ञान चारित्र तप और वीर्य, इन पंचाचारों तथा दिगम्बर मुनियोंके २८ मूल गुणों तथा अन्य सब आचरणका भेद समझाकर दीक्षा दी । सो इनके साथ सातसौ वीरोंने भी दीक्षा ली । और भी बहुतसे स्त्री पुरुषोंने यथाशक्ति व्रत लिये तब राजा कुंदप्रभा और मैनासुन्दरी, रयनमंजूषा, गुणमाला, चित्ररेखादि रानियोंने भी आर्यिकाके व्रत किये ।

श्रीपाल मुनिको केवलज्ञानकी प्राप्ति

राजा श्रीपाल दीक्षा लेकर बाईस परीषहोंको सहते दुर्द्धर तप करते, तेरा प्रकार चारित्रको पालते, और देश विदेशोंमें भव्य जीवोंको संबोधन करते हुए कुछ काल तक विचरते रहे । तपसे शरीर क्षीण हो गया । कभी गिरि, कभी कंदर, कभी सरोवरके तट और कभी झाड़के नीचे लगाते । शीत उष्णादि परीषह तथा चेतन अचेतन वस्तुओं कृत घोर उपसर्गोंको सहते तपश्चरण करने लगे । सो कुछेक काल बाद घातिया कर्मोंका क्षय होते ही उनको केवलज्ञान प्रगट हुआ । उस समय देवोंका आसन कंपायमान हुआ, सो इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने आकर गंधकुटीकी रचना की और सुरनर विद्याधरोंने मिलकर प्रभुकी स्तुति कर केवलज्ञानका उत्सव किया ।

इस प्रकार वे श्रीपालस्वामी अपने प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा लोकालोकके समस्त पदार्थोंको हस्तरेखावत् देखने जाननेवाले बहुत काल तक भव्य जीवोंको धर्मका उपदेश करते रहे । पश्चात् आयु कर्मके अन्तमें शेष अघा तया कर्मोंका भी नाशकर एक समय मात्रमें परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए और सम्यक्त्वादि आठ तथा अनन्त गुणोंको प्राप्त कर संसार, संतति, जन्म, जरा, मरणका नाश कर अविनाशी पद प्राप्त किया । धन्य हैं वे पुरुष, जो इस भवजलको शोषण कर परमात्म पद प्राप्त करें ।

सिद्धचक्र व्रत पालकर, पंच महाव्रत मांड ।
श्रीपाल मुक्तहिं गये, भव दुःख सकल बिछांड ॥
सिद्धचक्र व्रत धन पालक श्रीपाल ।
फल पायो तिन तको, 'दीप' नवावत भाल ॥

और मैनासुन्दरी आर्यिकाने भी घोर तप किया । सो अन्तमें सन्यास मरण कर सोलहवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर बाईस सागर आयुका धारी देव हुआ । वहांसे चय मोक्ष जावेगा । कुन्दप्रभा रानीने भी तपके योगसे सन्यास-मरण कर सोलहवें स्वर्गमें देव पर्याय पाई तथा रयनमंजूषा आदि अन्य स्त्री तथा पुरुषोंने भी जैसा२ तप किया उसके २ स्वर्गादि शुभ गतिको प्राप्त हुये ।

इस प्रकार हे राजा श्रेणिक ! श्रीपालजीका चरित्र और सिद्धचक्र व्रतका फल आपसे कहा । एवं श्री गौतमस्वामीके मुखसे सिद्धचक्र व्रतका फल (श्रीपाल चरित्र) सुनकर संपूर्ण सभाको अत्यानंद हुआ देखो, जिनधर्म और इस व्रतकी महिमा कि कहां तो कोढ़ी श्रीपाल और कहां आठ दिनमें कोढ़ दूर होकर कामदेवके समान रूप होना, और सागर तिरना, लक्ष चारोंको बांधना तथा और भी बड़े२ आश्चर्य जैसे कार्य करना, आठ हजार रानियों और इन्द्रके समान बड़ी विभूतिका स्वामी होना व इस प्रकार मनुष्य भवमें यश, कीर्ति और सुखोंको भोगकर अन्तमें सकल कर्मोंका नाशकर अविनाशी पदको प्राप्त होना । इसलिए जो कोई भव्य जीव जिनधर्मको धारण कर मन, वचन, कायसे व्रतोंको पालन करते हैं वे भी इस प्रकार उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ।

सर्व धर्मको सार है, सम्यक् दर्शन ज्ञान ।
अरु सम्यक् चारित्र मिल, यही मोक्षमग जान ॥

कर त्रिशुद्ध या मग लगे, जो नर चतुर सुजान ।
सो सुरनर सुख भोगके, अन्त लहें निर्वान ।।
जो नर वांचे भावसे, सुनें सुनावे सार ।
मन वांछित सुख सो लहे, अरु पावें भव पार ।।
पंच परम पद२ प्रणमि, सरस्वती उर धार ।
सरल देश-भाषा यही, पद्य ग्रन्थ अनुसार ।।
२४ ३ ९
तीर्थङ्कर भज शल्य तज, ज्ञेय पदार्थ विचार ।
ज्येष्ठ कृष्ण ग्यारस करी, कथा पूर्ण सुखकार ।।
शब्द भेद जानो नहीं, पढ़ो न शास्त्र पुरान ।
न्यूनाधिकता होय जो, क्षमा करो बुधवान ।।
नरसिंहपुर है जन्म थल जाति जैन परवार ।
'दीपचन्द' वर्णी करी, भाषा बुद्धि अनुसार ।।